संस्कृत B.A., M.A., Phd., शास्त्री तथा
आचार्य्य छात्रोपयोगी

पद्य लहरी

लेखक—
पं० जमीतारामात्मज कवितार्किक
ज्योतिष शास्त्र निष्णात
पं० ज्ञानचन्द्र शर्मा वेदान्त शास्त्री

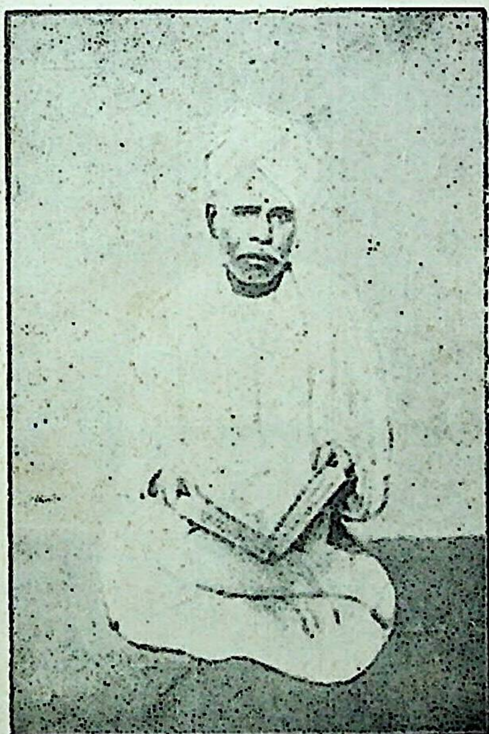
Publishers
SKY LARK PHOTO STUDIO
Green Park,
DELHI.

Price 1.50

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

6-6-76

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।



अनेन प्रीयतां तातो जमीताराम पण्डितः
जनको मे ब्रह्मलोके न्यायवेदान्तकेसरी ॥

आभारप्रदर्शनम्

भारतस्योत्तरे देशे इटावापत्तने शुभे ।
वैश्यवंशे सुविख्यातो धर्मनारायणः सुधीः ।।१।।
तस्य पुत्रो बुधसमो राजनीतिविशारदः ।
श्रीमन्नारायणः श्रीमान् विश्रुतो राजसंसदि ।।२।।
पत्नी धर्मानुगा तस्य नाम्ना ख्याता मदालसा ।
सुपुत्री जमनालालबजाजस्य मनस्विनः ।।३।।
देव्या तया प्रेरितोऽहं निर्मातुं सत्यसागरम् ।
गीर्वाणवाणीसाहित्यस्येतिहासं प्रमाणितम् ।।४।।
तस्याः देव्याः प्रमोदाय श्रीमन्नारायणस्य च ।
रचयित्वा तयोरेव करयोरर्पयाम्यहम् ।।५।।
अनेन प्रीयतां तातो जमीतारामपण्डितः ।
जनको मे ब्रह्मलोके न्यायवेदान्तकेसरी ।।६।।
कृष्णभक्तिपरा देवी श्रीरिहाणा च योगिनी ।
यया नित्यं प्रेरितोऽहं लिखितुं सत्यसागरम् ।।७।।
मान्यः श्रीभगवद्दत्तः इतिहासेषु पण्डितः ।
प्रीतो भवतु येनाहं चोदितो ग्रन्थलेखने ।।८।।
श्रीमान् प्रेमनिधिः शास्त्री सुश्लाघ्यो मे कवीश्वरः ।
दक्षहस्तायितं येन ग्रन्थरत्नप्रकाशने ।।९।।
आभारी चेतसाहं श्रीकल्याणस्य दिनं दिनम् ।
ग्रन्थाः समर्पिता येन महात्मा ग्रन्थलेखने ।।१०।।

आभारवान्

ज्ञानचन्द्रः

वाल्मीकि

पाश्चात्य मतानुसार ई० पूर्व 400 वर्ष
भारयीय मत से त्रेता युग ।

इन्होंने आदि काव्य रामायण की रचना की । काहनपुर के पास बिठूर एक स्थान है, जो स्वायम्भू मनु की राजधानी थी । ध्रुव का जन्म यहीं पर हुआ । बिठूर से ६ मील की दूरी पर बेलारुद्रपुर एक ग्राम है यह वाल्मीकि ऋषि की जन्मभूमि थी । यहीं लवकुश का जन्म हुआ । नीति की दृष्टि से सारे साहित्य में ऐसा ग्रन्थ नहीं है । इस आदि काव्य में 24000 हजार श्लोक हैं और सात काण्ड हैं । बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, युद्ध और उत्तर काण्ड । पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि बाल और उत्तर काण्ड मूल में नहीं थे । यह बाद में जोड़े गये । क्योंकि युद्ध काण्ड के अन्त में काव्य की समाप्ति के सम्पूर्ण लक्षण मिलते हैं और बाल काण्ड की भाषा अन्य काण्डों की भाषा से भिन्न है । परन्तु भारतीय विद्वान[1] दिङ्नाग कुन्दमाला के रचयिता हैं उन्होंने अपने नाटक में इस बात का उल्लेख किया है कि वाल्मीकि ने सीता के निर्वासन तक रामायण की रचना की है ।[2] आनन्दवर्धन ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि वाल्मीकि ने राम और सीता के वियोग पर्यन्त रामायण की

---

1. कुन्दमाला 14/6 ।
2. ध्वन्यालोक अध्याय 4 ।

रचना की है। ऐसा कहा जाता है कि जब व्याध के बाण से विधे हुए क्रौंच के लिए विलाप करने वाली क्रौंची का करुण शब्द ऋषि ने सुना तो उनके मुख से अकस्मात् यह श्लोक[1] निकल पड़ा जिसका अर्थ यह है—

हे निषाद तुम ने काम से मोहित इस क्रौंच पक्षी को मारा है अतः तुम सदा के लिए प्रतिष्ठा प्राप्त न करो।

इस श्लोक के आधार पर ऋषि ने रामायण की रचना की। पर पाश्चात्य विद्वान Weber का मत है कि रामायण की रचना बौद्ध ग्रन्थ 'दशरथ जातक' और होमर के 'इलियट' पर आधारित है। वाल्मीकि मुनि से भी पहले सूतों चारणों और कुशीलवों द्वारा राम कथा गाई जाती थी। उसी कथा को[2] भृगु के पुत्र च्यवन ने ग्रन्थ के रूप में संकलन किया पर उन्हें इस रचना में असफलता रही, जिस रचना को वाल्मीकि ने पूरा किया। वाल्मीकि से पहले राम कथा मौखिक रूप में विद्यमान थी ऐसा हरिवंश[3] पुराण में भी लिखा है। भारतीय परम्परा के अनुसार राम त्रेतायुग में हुए। वाल्मीकि अनुष्टुप छन्द के आविष्कारक माने जाते हैं। आनन्दवर्धन ने करुणा को ही रामायण का मुख्य रस माना है। वाल्मीकि ने स्वयं इसकी रोचकता पर कहा है कि जब तक पर्वत[4]

---

1. मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
   यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।। बालकाण्ड 2/15
2. वाल्मीकिरादौ च ससर्ज पद्यं जग्रन्थ तन्न च्यवनो महर्षिः। बुद्धचरित 1/43
3. गाथा मप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः।
   रामे निबद्धतत्त्वार्थाः माहात्म्यं तस्य धीमतः ।। हरिवंशे ४।१४१
4. यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
   तावद्र रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ।।

नदियां भूतल पर हैं तब तक रामायण की कथा संसार में प्रचलित रहेगी[1] त्रिविक्रमभट्ट ने नलचम्पू के आदि में कहा है कि उस मुनि को नमस्कार है जिसने रम्य रामायण की कथा का निर्माण किया। यह कथा सदूषण (दोष सहित तथा दूषण नामक राक्षस से समन्वित) होने पर भी निर्दोष है। तथा सखरा (कटुता पूर्ण तथा खर राक्षस के साथ) होने पर भी कोमल है।

सूतों के अतिरिक्त एक ऐसा भी वर्ग था जो इन स्तुतियों को कण्ठस्थ कर स्थान-स्थान पर जाकर इन स्तुतियों को सुनाता था। यह वर्ग कुशीलव कहलाता था। इन्हीं कुशीलवों ने रामायण का प्रचार गाकर किया। रामायण के मुख्य तीन संस्करण मिलते हैं।

(1) दाक्षिणात्य संस्करण जिसमें बम्बई और मद्रास से प्रकाशित रामायणें गिनी जाती हैं।

(2) बंगीय संस्करण जो रामायण कलकत्ते से प्रकाशित हुई।

(3) पश्चिमोत्तरी संस्करण जो रामायण होशियारपुर से प्रकाशित हुई हैं। प्रत्येक संस्करण में ऐसे अनेक श्लोक हैं जो अन्य संस्करण में नहीं पाये जाते। प्रो० याकोबी के मतानुसार रामायण के मूल में पांच ही काण्ड थे। बाल और उत्तर काण्ड मूल में नहीं थे। युद्ध काण्ड के अन्त में दी गई फल स्तुति से रामायण की समाप्ति वहीं

---

1. सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला।
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा।। नलचम्पू

पर स्पष्ट जान पड़ती है। बालकाण्ड का प्रायः आधा भाग राम-चरित से सम्बन्ध नहीं रखता और उसकी उक्तियां बाकी पांच काण्डों से मेल नहीं खाती और भाषा भी अन्य काण्डों की भाषा से भिन्न है। इन प्रक्षेपों की सृष्टि सूतों चारणों और कुशीलवों द्वारा हुई। याकोबी मूल रामायण का रचनाकल 800 से 600 ई० पू० मानते हैं। रामायण संस्कृत साहित्य का आदि महाकाव्य है। तमसा के तट पर महर्षि वाल्मीकि के कण्ठ से यह करुणामयी वाग्धारा फूट पड़ी (मा निषाद इत्यादि)

इसमें 24 हजार श्लोक हैं और प्रत्येक हजार श्लोक का पहला अक्षर गायत्री के क्रम से एक-एक अक्षर से प्रारम्भ होता है। अर्थात् 24000 श्लोकों में गायत्री के 24 अक्षर आ जाते हैं। वाल्मीकि ब्राह्मण थे। इनके विषय में एक दन्त कथा है कि यह पहले पथिकों को लूट कर अपने परिवार का भरण पोषण करते थे और अन्त में नारद मुनि के उपदेश से राम-नाम जपने में इतने लीन हो गये कि उनके शरीर पर वल्मीक जम गई। इसी से इनका नाम वाल्मीकि हो गया। वाल्मीकि का समय पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार ई० पू० 1500 और अन्य मतों के अनुसार 3000 या 4000 वर्ष भी मान लिया जा सकता है।

दशरथ जातक एक बौद्धों का जातक ग्रन्थ है, जिसमें राम की कथा मिलती है। बौद्धों के समय[1] अयोध्या का नाश हो चुका था और उसके पास ही साकेत नाम का दूसरा नगर स्थापित हुआ। वाल्मीकि रामायण पर 30 टीकायें लिखी गईं। इनमें कतक विरचित सबसे प्राचीन है।

---

1. मनुना मानवेन्द्रेण सा पुरी निर्मिता स्वयम्।

व्यास ई० 3100 वर्ष पूर्व

महाभारत को पंचम वेद कहा है[1]। इसके रचयिता व्यास हैं। ब्रह्मा से लेकर कृष्णद्वैपायन तक लगभग 27 से 32 तक व्यास नामधारी व्यक्ति हुये हैं। जय नामक महाग्रन्थ[2] के रचयिता सबसे अन्तिम व्यास हैं। व्यास किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं। यह एक पदवी है। जो ऋषि वेद संहिता का विभाजन या पुराणों का संकलन कर ले वही उस समय का व्यास कहा जाता है। [3]अश्वघोष ने कृष्णद्वैपायद के सम्बन्ध में तीन नई बातों को सामने रखा। पहली बात तो यह कि कृष्णद्वैपायन ने वेदों को अलग वर्गों में विभाजित किया। दूसरी बात यह है कि वसिष्ठ और शक्ति उनके पूर्वज थे। और तीसरी महत्व पूर्ण बात यह है कि वह सारस्वत वंशीय थे। इन्हीं कृष्णद्वैपायन का दूसरा नाम वादरायण था। क्योंकि उन्होंने वदरिकाश्रम में बैठ कर वेदान्त सूत्रों का निर्माण किया था। अलबेरुने व्यास को पराशर का पुत्र कहा है और स्पष्ट कर दिया है कि पैल, वैषम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु नामक चार शिष्य थे। इन्होंने क्रमशः ऋग्, यजु, साम, और अथर्व का अध्ययन किया था।

---

1. भारतः पंचमो वेदः।

2. नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

3. सारस्वतश्चापि जगाद नष्टं वेदं पुनर्यंद् ददृशुर्न पूर्वे।
व्यासस्तथैनं बहुधा चकार न यं वसिष्ठः कृतवान्न शक्तिः॥
व्यास वेदान्त सूत्र तथा जय नामक ग्रन्थ के रचयिता थे।

बुद्धचरिते 1/42

द्वैपायन नाम भी किसी द्वीप में उत्पन्न होने के कारण पड़ा जो द्वीप कदाचित् यमुना के तट पर कहीं स्थित था। दाशराज की पोषित पुत्री पराशर मुनि के द्वारा गर्भवती होकर अन्त में व्यास कृष्णद्वैपायन की माता बनी। जतूकर्ण्य कृष्णद्वैपायन के विद्या गुरु थे। महाभारत के शान्तिपर्व से विदित होता है कि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास की निवास भूमि हिमालय में बदरिकाश्रम थी। उनका दूसरा आश्रम सरस्वती के तट पर था। बदरिकाश्रम कृष्णद्वैपायन की साधना भूमि थी। यहीं बैठ कर निरन्तर तीन वर्षों की कठिन साधना में आसीन होकर महाभारत नामक उत्तम आख्यान की रचना की। इनका शरीरान्त भी बदरिकाश्रम में हुआ।

पाणिनि और वररुचि अपर नाम कात्यायन 400 ई० पूर्व

पाणिनि लाहुर का रहने वाला था जो सीमा प्रान्त में मरदान के समीप है। इसका प्राचीन नाम शालातुर था। पाणिनि बड़े भारी वैय्याकरण (Grammarian) थे। इन्होंने व्याकरण में अष्टाध्यायी तथा साहित्य में पातालविजय अपर नाम जाम्बवतीविजय काव्य की रचना की जो अब उपलब्ध नहीं है। कात्यायन ने वार्तिक पाठ तथा साहित्य में स्वर्गारोहण नामक काव्य की रचना की। इनका जन्म स्थान कोसम इलाहाबाद के समीप था। जिसका प्राचीन नाम कौशाम्बी था।

इनकी रचना महाभारत एक बृहद राष्ट्र का ज्ञान सर्वस्व है। इसके लिए तो यहाँ तक कहा है कि जो कुछ इसमें नहीं है वह इस धरती भर में कहीं भी नहीं है। महाभारत के नामकरण के सम्बन्ध में

लिखा है कि देवताओं द्वारा तौले जाने पर चारों वेदों से महान् अर्थात् भारवान् होने के कारण उसका ऐसा नामकरण हुआ। महासागर रूप इस 'महाभारत' के गर्भ से ही [1]गीता, [2]विष्णुसहस्र नाम, [3]अनुगीता, [4]भीष्मस्तवराज और गजेन्द्रमोक्ष नामक पंचरत्नों की सृष्टि हुई। महाभारत का दूसरा नाम शतसाहस्री संहिता भी है। महाभारत के प्रथम टीकाकार सर्वज्ञ नारायण १४ वीं शती में हुए। उनकी टीका अपूर्ण है। उसके वाद अर्जुन मिश्र ने की। इसके तीसरे टीकाकार नीलकण्ठ हुए। यह महारष्ट्र के थे। कृष्णद्वैपायन व्यास विरचित ग्रन्थ का नाम 'जय' था इसमें 8800 श्लोक थे। वैशम्पायन ने जिस कथा को कहा उसका 2 नाम भारत था। उसकी श्लोक संख्या भी बढ़कर 24000 हो गई किन्तु अन्त में सौति ने उपाख्यानों और हरिवंश को भी जोड़ दिया। तब उसका नाम महाभारत हुआ। विश्वसाहित्य के इतिहास में यह सबसे बड़ा महाकाव्य है। इसके 18 पर्व हैं। सबसे बड़ा शान्ति पर्व और महाप्रस्थानिक पर्व सबसे छोटा है। जय महाकाव्य का समय ई० से 300 वर्ष पूर्व है। महाभारत पर 20 टीकायें हैं। इसका मुख्य रस तो शान्त है वीर तो अंगभूत है। व्यास

---

1. यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।
2. अष्टौ श्लोकसहस्राणिअष्टौ श्लोकशतानि च। अहं वेद्मि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा।
3. चतुर्विंशति साहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्। उपाख्यानैर्विना तावत् भारतं प्रोच्यते बुधैः।
4. यः स्वर्गारोहणं कृत्वा स्वर्गमानीतवान् भुवि।
काव्येन रुचिरेणैव ख्यातो वररुचिः कविः॥

देव ने महाभारत की कथा वैशम्पायन नामक अपने शिष्य को सुनाई। इस कथा को वैशम्पायन ने अर्जुन के पौत्र जनमेजय के सर्पसत्र में सुनाया। बाद में लोमहर्षण के पुत्र सौति ने शौनकादि ऋषियों को सुनाया।

अश्वघोष ई० 100

अश्वघोष महाराज कनिष्क के गुरु थे। यह सुवर्णाक्षी के पुत्र थे। इनका जन्म स्थान साकेत (अयोध्या) था। यह जाति के ब्राह्मण थे, पर पीछे बौद्ध बन गये। इनका समय ईसा की प्रथम शताब्दी है। यह दर्शन, संगीत के महान् विद्वान् और कवि थे। इन्होंने (1) बुद्ध चरित (2) सौंदरनंद (3) शारीपुत्रप्रकरण (1) वज्र-सूचकोपनिषद् (5) सूत्रालंकार (6) महायानश्रद्धोत्पादकसंग्रह (7) गण्डकीस्तोत्रगाथा। इन ग्रन्थों की रचना की। उनके उपदेश को सुनथे के लिए घोड़े भी अपना आहार छोड़ देते थे ऐसी उनकी वाक्शक्ति थी। अतएव उनका नाम अश्वघोष पड़ा। अश्वघोष बौद्ध धर्म की महायान शाखा के संस्थापकों में से एक थे। बुद्ध चरित 28 सर्गों का महाकाव्य हैं। इसमें गौतम बुद्ध के चरित का वर्णन है। इसके केवल 28 सर्गों में से 17 सर्ग उपलब्ध हैं और उन में भी 13 सर्ग मूल ग्रन्थ के हैं और अन्तिम 4 सर्ग उपलब्ध न होने के कारण किसी नैपाल के पण्डित ने जोड़ दिये हैं। इस महा काव्य की रचना बौद्ध जातक ग्रन्थ 'ललितविस्तर' के आधार पर हुई है। सौंदरनंद इसमें 11 सर्ग हैं। इसमें गौतम बुद्ध के सौतेले

---

1. सरस्वती पवित्राणां जातिस्तत्र न देहिनाम्।
   व्यासस्पर्द्धी कुलालोऽभूद् द्रो...भारते कविः॥

भाई नन्द और उसकी पत्नी सुन्दरी एक दूसरे के प्रति उसी तरह आसक्त हैं जैसे चक्रवाक् और चक्रवाकी। 'शारीपुत्रप्रकरण' इसकी प्रति को मध्य ऐशिया के तुर्फान नामक स्थान से प्राप्त किया था । इसमें मौद्गल्यान तथा शारीपुत्र के बुद्ध के द्वारा शिष्य बनाए जाने की कथा है । वज्रसूचकोपनिषद् (हीरे की सुई) इसमें ब्राह्मणधर्म की वर्णव्यवस्था तथा जाति भेद का खण्डन किया गया । कोई इसे अश्वघोष की कृति मानते हैं कोई धर्म कीर्ति की । सूत्रालंकार को कई आचार्य कुमारलात की कृति मानते हैं । गण्डकीस्तोत्रगाथा यह गीति काव्य है। इसमें स्रग्धरा छन्द में लिखो 29 गाथायें हैं। उपरोक्त सात ग्रन्थों में पहले २ ग्रन्थ कवि की कीर्तिस्तम्भ हैं । पिछले पाँचों को विद्वान् अश्वघोष की रचना नहीं मानते ।

घटखर्पर ई० 100

इसका नाम घटखर्पर इसलिए पड़ा था कि इसने अपने काव्य के अन्त के श्लोक में यह प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई इसकी यमक और अनुप्रास में बराबरी करेगा उसके यहाँ वह कवि 1फूटे घड़े से पानी भरेगा । इस कवि का विरचित छोटा सा घटखर्पर नाम का काव्य है। इस काव्य के कुल 22 श्लोक हैं । इसमें मेघदूत के विपरीत पत्नी अपते पति को वर्षारम्भ में सन्देश भेजती है। प्रति श्लोक में अनुप्रास और यमक है। इस काव्य की 8 टीकायें हैं, जिन

---

१. आलम्ब्य वाम्बुतृषितः करकोशपेयं ।
भावानुरक्तवनितासुरतैः सुपेयम् ।।
जीयेय येन कविता यमकैः परेण ।
तस्मै वहेयमुदकं घटकर्परेण ।।

अभिनवगुप्तपाद विरचित कुलकवृत्ति नाम की टीका श्रेष्ठ है। इसका दूसरा ग्रन्थ नीतिसार 21 श्लोकों का है। यह भी इसी का माना जाता है।

सातवाहन ई० 200

इन्होंने गाथा सप्तशती नामक गीति काव्य की रचना की। इतिहास के अनुसार यह आन्ध्रवंश का 17वाँ राजा माना जाता है। इसका निवासस्थान दक्षिण में गोदावरी नदी के तट पर स्थित प्रतिष्ठान पत्तन (बैठन) नाम का नगर माना जाता है। गाथासप्तशती [1]महाराष्ट्री प्राकृत में विरचित गीति काव्य है। इसमें 700 आर्य्यायें हैं। संभोग और विप्रलम्भ शृङ्गार का वर्णन करती हैं। इनमें कुछ तो स्वयं सातवाहन द्वारा विरचित हैं पर अधिकांश पद्य कई तत्कालीन अथवा पूर्ववर्ती कवियों की रचनायें हैं। जिनके नाम का अब पता नहीं। सातवाहन ने स्वयं कहा है कि शृङ्गार रस से भरी हुई लाखों गाथाओं में से 700 उक्तियाँ चुन कर रख दीं जो उन्हें अत्यन्त सुन्दर मालूम हुईं। यह सुभाषित संग्रह का प्रथम ग्रन्थ है। सप्तशती का प्रत्येक पद्य अपने आप में स्वतन्त्र है। यह काव्य इतना श्रेष्ठ है कि ई० 1200 में होने वाले गोवर्द्धन ने संस्कृत में आर्या सप्तशती और ई० 1662 में होने वाले बिहारी ने हिन्दी में बिहारी सतसई की रचना की। [2]हर्ष चरित आदि में बाण सातवाहन की बड़ी प्रशंसा करता है। यह काव्य बहुत ही मनोहर है। इस पर 7 टीकायें हैं। पर गंगाधर भट्ट की भावलेशप्रकाशिका बड़ी उत्तम है।

---

1. महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदु :—दण्डी
2. अविनाशिनमग्राम्यमकरोत् सातवाहनः।
   विशुद्धजातिभिः कोषैः रत्नैरिव सुभाषितैः ।। हर्षचरिते ।।

अमरसिंह ई० 400

इसका विरचित अमर कोश जिसका नाम 'नामलिंगानुशासन भी है। यह कोश बड़ी ही वैज्ञानिक विधि से तैयार किया गया है। इस पर लगभग ५० टीकायें लिखी गई हैं। प्रचलित टीकाओं में प्रभा माहेश्वरी सुधा, रामाश्रमी और नामचन्द्रिकादि हैं। इनमें क्षीरस्वामि की टीका बड़ी लोकप्रिय है। कोश ग्रंथों के निर्माण में जैन आचार्यों का प्रमुख भाग है। अमरसिंह का नाम विक्रमादित्य के नवरत्नों में मिलता है। अमर कौशिक ई० ६०० में तिब्बती और चीनी तिब्बती और चीनी भाषा में अनुवाद उज्जैनी के गुणरात ने किया था। इसके तीन काँडों में कई वर्ग हैं। सारा ग्रन्थ प्रायः अनुष्टुप छन्द में ही है। परंपरागत से सुना जाता है कि इसके चार काण्ड थे। और चौथा काण्ड, तन्त्र बीज तथा तन्त्र परिभाषा पर था जो ई० ६०० से उपलब्ध नहीं है।

प्रवरसेन ई० 550

इस कवि का महारष्ट्र प्राकृत में विरचित सेतबन्ध नाम का महाकाव्य है। इस काव्य को रावणवध और दशमुखवध भी कहते हैं। प्रवरसेन काश्मीर का राजा था ऐसा (Stein) मुद्रित राज-तरंगिणी से ज्ञात होता है कि मातृगुप्त के बाद यह गद्दी पर आया था। [1]बाण ने अपने हर्षचरित के आदि में प्रवरसेन की बड़ी प्रशंसा की है। कुछ आलोचकों का कथन है कि यह ग्रन्थ झेलम नदी पर बने नावों के पुल की स्मृति में है। यह काव्य सेतुनिर्माण से आरम्भ कर रावण की मृत्यु तक का वर्णन करता है। इसमें 15 आश्वासक हैं और प्रत्येक वर्ग के अन्त में अनुराग शब्द का प्रयोग है। [2]दण्डी ने

---

1. कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना। हर्षचरिते ।।
2. आकरः सूक्तिरत्नानाम् ।।

काव्यादर्श में इसे सूक्तियों का खजाना कहा है। इसकी तीन टीकायें हैं जिनमें रामदासकृत रामसेतु-प्रदीप नाम की टीका बड़ी प्रसिद्ध है।

भारवि ई० 600

भारवि, पुलकेशी द्वितीय के अनुज चालुक्य विष्णुवर्धन के सभा पण्डित थे। इनका नाम दामोदर था और यह त्रावणकोर के रहने वाले थे। यह शैव थे। कौशिक इनका गोत्र था। यह नारायण स्वामी के पुत्र थे। किंवदन्ति के अनुसार भारवि अपने पिता से रुष्ट होकर अपनी सुसराल चले गये और वहाँ गायें चराने का काम किया करते थे। किंवदन्ति के ही अनुसार यह दण्डी के पितामह थे। यह राजनीति के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होंने किरातार्जुनीय नामक 18 सर्गों का महाकाव्य लिखा जिसमें किरातरूपधारी शिव के साथ एक सूअर के अधिकार पर अर्जुन का युद्ध हुआ। इस कथा का वर्णन है। भारवि राजनीति सम्बन्धी विवेचन में मनु के अनुयायी हैं। कालिदास की कविता में द्राक्षा है। अंगूर के दाने की तरह मुँह में रखते ही रस की पिचकारी फूट पड़ती है जब कि भारवि का काव्य नारिकेल है, जहां नारिकेल को तोड़ने की सख्त मेहनत के बाद उसका रस हाथ आता है ऐसा मल्लिनाथ ने कहा है। इनके ग्रन्थ की गणना वृहत्त्रयी (किरात, माघ, नैषध) में की जाती है। अर्थ गौरव भारवि की सबसे बड़ी विशेषता है। क्षेमेन्द्र ने अपने सुवृत्ततिलक में भारवि के वंशस्थवृत्त की बड़ी प्रशंसा की है। इस काव्य पर 19 टीकायें लिखी गई हैं परन्तु मल्लिनाथ की घण्टापथ टीका सबसे श्रेष्ठ है। कुछ विद्वान् इन्हें अचलपुर का निवासी बतलाते हैं।

---

१. नारिकेलफलसंमितं वचो भारवेः। मल्लिनाथः :

२. वृत्तच्छत्रस्य सा काऽपि वंशस्थस्य विचित्रता।
प्रतिभा भारवेर्येन सच्छायेनाधिकी कृता॥ क्षेमेन्द्रः॥

भर्तृमेण्ठ ई० 600

इसने 'हयग्रीववध' महाकाव्य लिखा जो अब उपलब्ध नहीं है। सुभाषित ग्रन्थों में उसके श्लोक बिखरे हुए मिलते हैं। राजशेखर का कथन है कि पुराकाल में उत्पन्न वाल्मीकि कवि ही दूसरे जन्म में भर्तृमेण्ठ, भर्तृमेण्ठ से भवभूति और भवभूति से राजशेखर नाम से हुए। ऐसी किसी ज्योतिषी की उक्ति है जो राजशेखर के बाल्यकाल में उसके माता पिता के सामने कही गई थी। कल्हण ने लिखा है कि एक कवि भर्तृमेण्ठ नामक स्वनिर्मित महाकाव्य हयग्रीववध को तत्कालीन राजा मातृगुप्त के सामने पढ़ने की अभिलाषा से काश्मीर आया। भर्तृमेण्ठ ने अपनी कृति को अन्त तक पढ़ कर सुना दिया, परन्तु राजा ने काव्य की कुछ भी प्रशंसा न की। इस पर कवि को राजा की गुण ग्राहिकता तथा काव्यरसिकता पर अविश्वास हुआ और निरुत्साहित होकर जब अपनी पुस्तक को वेष्टन में समेटने लगा, तो राजा ने 'टपकता हुआ काव्यामृत्त पृथ्वी पर न गिरने पाये ऐसा सोच कर उस पुस्तक के नीचे स्वर्णपात्र रख दिया। राजा द्वारा किये गये इस सम्मान से सन्तुष्ट होकर महाकवि को अपनी रचना के उपलक्ष में बहुमूल्य पारितोषिक व्यर्थ सा लगने लगा। यह कवि जाति से महावत था क्योंकि मेण्ठ शब्द महावत का पर्यायवाची है। [1]मातृ-

---

१. काश्मीर के राजा हिरण्य की निःसन्तान मृत्यु हो जाने के कारण चक्रवर्ती-विक्रमादित्य हर्ष ने अपने गुणग्राही ईमानदार और सेवापरायण राज कवि मातृगुप्त को ई० 500 में हिरण्य राजा की गद्दी पर बिठा दिया। राजतरंगिणी में कल्हण का कथन है कि अपने कृपालु स्वामी विक्रमादित्य का देहान्त सुनकर मातृगुप्त ने भी राज्य त्याग कर वैराग्य ले लिया। कल्हण लिखता है कि मातृगुप्त प्रवरसेन और विक्रमादित्य इन तीनों राजाओं की कथा त्रिपथगा गंगा के समान परम पवित्र है।

वक्रोक्त्या मेण्ठराजस्य वहन्त्या सृणिरूपताम्।
आविद्धा इव धुन्वन्ति मूर्द्धानं कविकुंजराः॥ जल्हण मुक्तावली॥

गुप्त और भर्तृमेण्ठ का सम्बन्ध बहुत समय तक बना रहा। मेण्ठराज की उक्तियाँ बड़ी ही हृदयाकर्षक हैं।

मयूर ई0 625

यह काशी से पूर्व के थे। गोरखपुर जिला के कुछ ब्राह्मण अपने को मयूरभट्ट की सन्तान बताते हैं।

इनका विरचित 'मयूर शतक' नाम का काव्य है। यह कवि वाणभट्ट का समकालिक था। यह दोनों हर्षवर्द्धन की सभा के पण्डित थे। इसमें कोई सन्देह नहीं है क्योंकि पद्मपुत्र ने अपने नवसाहसाङ्क चरित में इन दोनों की स्पर्द्धा का वर्णन किया है। परम्परा से ऐसा ज्ञात होता है कि मयूर बाणभट्ट का घनिष्ट सम्बन्धी था। कोई मयूर को वाण का श्वसुर कहते हैं और कोई श्याला मानते हैं। इस मयूर शतक के सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता है कि मयूर कवि ने एक बार अपनी युवती कन्या का पूर्ण रूप से शृङ्गार वर्णन किया जिससे क्रुद्ध होकर उसकी कन्या ने उसको शाप दे दिया जिसके कारण उसके सर्वाङ्ग में कुष्ट फूट गया। इस कुष्ट को दूर करने के हेतु सूर्य नारायण की आराधना के लिये सूर्य्यशतक वा मयूरशतक की रचना की जिससे उसका कुष्ट दूर हुआ। इसका समर्थन मम्मट[1] भट्ट के काव्य प्रकाश में किया है। ययूर शतक यह एक खण्ड काव्य है। वास्तव में इसको स्त्रोत्र काव्य ही कहना चाहिए परन्तु काव्य के विशेष गुण मिलने से इसकी गणना खण्ड काव्यों में की गई है। मयूर शतक में गौणीरीति और यमकादि विशेष हैं। यह इना लोकप्रिय हुआ कि इस पर १० टीकायें लिखीं गई जिनमें

---

1. आदित्यादेर्मयूरादीनामिवानर्थनिवारणम्—काव्यप्रकाश

बलदेव की सूर्यानुवादिनी सर्वश्रेष्ठ है । ई० 1889 की काव्यमाला में मयूरशतक त्रिभुवन पाल की टीका के साथ छपा है ।

इसी मयूर का मित्र था 'मातंगदिवाकर । ऐसा सुना जाता है कि यह जन्म का चाण्डाल था परन्तु अपनी गुणगरिमा से बाण और मयूर के समान ही राजा के आदर पात्र थे । इस बात को राजशेखर ने सरस्वती के प्रभाव को दिखाते हुए बड़े ही अच्छे ढंग से कहा है ।

द्रोणी कवि अज्ञात समय

व्यास से स्पर्धा करने वाला एक द्रोणी नाम का बड़ा भारी कवि था जो जाति का कुम्भकार था । पर उसका कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता ।

भट्टि ई० 650

सौराष्ट्र की वैभवशाली नगरी बल्लभी के नरेश श्रीधरसेन की सभा के भट्टि राज पंडित थे । बल्लभी में श्रीधरसेन नाम के चार राजा हुए । इसमें अन्तिम ने 644 ई० के लगभग राज्य किया । यह अन्तिम राजा विद्वानोंका आश्रयदाता था। ऐसा ज्ञात होता है कि भट्टि ने 644 में लगभग अपना महाकाव्य बनाया होगा । यह श्रीमाली ब्राह्मण थे और राजपुत्रों के अध्यापक थे । भट्टि मूलतः वैय्याकरण तथा अलंकार शास्त्री थे । बल्लभी संभवतः डूंगरपुर बाँसवाड़ा के आस पास दक्षिण पश्चिमी गुजराती भाग में स्थित थी । पाँचवीं

---

1. अहो प्रभावो वाग्देव्याः यन्मातंगदिवाकरः ।
श्री हर्ष स्याभवत् सम्यः समो बाणमयूरयोः ।।

2. सरस्वती पवित्राणां जाविस्तत्र न देहिनां । व्यासस्पर्द्धी कुलालोऽभूद् द्रोणो भारते कविः ।

शताब्दी के अन्त में मैत्रक कुल के भट्टार्क ने सौराष्ट्र में बल्लभी राज्य की स्थापना की। यह राज्य ई० 770 तक जारी रहा पर अरबों के आक्रमण से यह राज्य नष्ट हो गया। बल्लभी वंश के अन्त होने के बाद पच्छिम में प्रधान शहर आणहिलवाड (पाटण) था जिसका महत्व ई० 15 वीं में नष्ट होकर अहमदाबाद की वृद्धि का कारण हुआ। भट्टि प्रवरसेन के सेतुबन्ध महाकाव्य से प्रभावित थे। भट्टि ने भट्टि या रावण वध नामक 22 सर्गों का महाकाव्य लिखा है। इस पर जयमंगला तथा मल्लिनाथ कृत दो टीकायें प्रकाशित हैं। इनके अतिरिक्त 10 और टीकाये हैं। भट्टि लिखते हैं कि मेरा यह काव्य वैय्याकरणों के लिये तो दीप के समान हैं पर दूसरों के लिये अंधे के हाथ के आरसी जैसा है।

भर्तृहरि ई० 650

इन्होंने नीतिशतक, शृंगारशतक और वैराग्यशतक की रचना की। जनश्रुति के आधार पर वह महाराज विक्रमादित्य के बड़े भाई थे। कई भट्टि काव्य के रचयिता भट्टि और शतकत्रय के भर्तृहरि को एक ही व्यक्ति मानते हैं पर यह संगत नहीं बैठता। वाक्यपदीय के रचयिता बौद्ध भर्तृहरि जिन्होंने सात बार प्रव्रज्या ग्रहण की थी शतकत्रय के भर्तृहरि से भिन्न हैं। इनका अपनी स्त्री से बड़ा प्रेम था। उनके पास कोई ब्राह्मण अमृत फल लाया। उन्होंने वह फल अपनी प्रियतमा को दे दिया। राणी ने वह फल अपने एक मित्र महावत को दिया। महावत का

---

1. दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षषांम्।
हस्तादर्श वदन्धानां भेवद् व्याकरणादृते॥
2. यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता।
साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः॥

प्रम एक वेश्या से था। उसने वह फल वेश्या को दे दिया। वेश्या ने वह फल राजा को दे दिया। फल को पुन: आये जान राजा को वैराग्य हो गया। राज्य छोटे भाई के देकर स्वयं जंगल में चले गये। इनका कथन है कि साहित्य, संगीत1 और कला से हीन मनुष्य पूंछ और सींगों के बिना पशु के समान है।

भौमक भट्ट ई० 700

इस कवि का दूसरा नाम भीम भी था। वह काश्मीर का निवासी था इसका विरचित रावणार्जुनीय नामका महाकाव्य है। काशिकावृत्ति और क्षेमेन्द्र के सुवृत्ततिलक में इस काव्य का वर्णन मिलता है।

रावणार्जुनीय—यह एक महाकाव्य है। इसमें 27 सर्ग हैं। इसमें रामायण की कथा का वह भाग है जिसमें रावण और सहस्रार्जुन का युद्ध हुआ था। इस काव्य का प्रधान उद्देश्य व्याकरण के प्रयोग विशद करना है। यह काव्य और भट्टि काव्य दोनों एक समय के हैं तथा दोनों का कार्य व्याकरण के प्रयोगों को विशद करना है। भट्टि की छाया पर इस काव्य की रचना हुई।

अमरु ई० 750

प्रबन्ध और मुक्तक काव्य का भेद बतलाते हुए मेरे पूज्य पिता श्रीजमीताराम जी यह उपमा दिया करते थे कि यदि प्रबन्ध काव्य एक विस्तृत बनस्थली मानी जाये तो मुक्तक को एक चुना हुआ गुलदस्ता।

अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या।
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥

1. साहित्यसंगीतकलाविहीन: साक्षात् पशु:
पुच्छविषाणहीन: ।
गीतं वाद्यं नर्तनं च त्रयं संगीतमुच्यते ॥

अमरुक कवि ने अमरुक शतक नामक एक मुक्तक काव्य की रचना की। आनन्दवर्द्धन (950 ई०) ने अमरुक कवि के एक-एक मुक्तक पर सैंकड़ों प्रबन्ध काव्यों को न्योछावर करने की घोषणा की थी और अपने ध्वन्यालोक नामक ग्रंथ में अमरुक के कई सरस पद्यों को उदाहरण के रूप में उपन्यास किया। भर्तृहरि और अमरुक समसमयिक थे यानी अमरूक भर्तृहरि से 25 या 30 वर्ष छोटे थे। अमरुक को काश्मीर का राजा मानकर शंकराचार्य के साथ जोड़ने की किंवदन्ती पाई जाती है कि जिस समय दिग्विजय के लिये निकले हुए ब्रह्मचारी शंकर शास्त्रार्थ में काम केलि सम्वन्धी शास्त्रीय प्रश्नों के पूछे जाने पर उत्तर देने की मोहलत माँगकर काश्मीर गये और वहां योगविद्या से मरे हुए राजा अमरुक के शरीर में प्रवेशकर उसकी सौ राणियों के साथ विलास कर पुनः अपने वास्तविक स्वरूप में आकर प्रतिपक्षी (मण्डन मिश्र की पत्नी) को जीत सके। उसी काल में शंकराचार्य ने अमरुक शतक की रचना की थी। अमरूक काश्मीर के निवासी थे। ऐसा जान पड़ता है कि कई संस्करणों ने अमरुक के वास्तविक पद्यों को छोड़ दिया है और कई अन्य कवियों के पद्य भी अमरुक शतक में समाविष्ट हो गये हैं। इसके अलग-अलग संस्करणों में अलग अलग पद्य संख्या है जो 90 से 115 तक पाई जाती है। पर इन में समान पद्य केवल 51 पाये जाते हैं। संम्भवतः विकटनितम्बा, शीलाभट्टारिका जैसी कवयित्रियों के भी दो तीन पद्य इनमें मिल गये हैं। अमरुक का वास्तविक प्रतिपाद्य रस शृंगार है।

रविचन्द्र ने अपनी टीका में अमरु के प्रत्येक पद्य का शान्त रस परक अर्थ भी किया है। मुक्तक काव्य वह है जिसमें प्रत्येक पद्य स्वतंत्र हो। प्रबन्ध काव्य या खण्डकाव्य में प्रत्येक पद्य एक दूसरे से गुथा रहता है। एक कड़ी की तरह दूसरी कड़ी में जुड़कर प्रबन्ध की शृंखला का सृजन करता है। मुक्तक काव्य एक ही कृति के डोरे में पिरोये हुए अलग-अलग मोती हैं, जो एक दूसरे से सर्वथा अलग रहते हैं। शृंगार

की विविध स्थितियों का वर्णन करने में अमरु बड़े ही दक्ष हैं। अमरु ने संस्कृत के कई भावी कवियों और कवयित्रियों को प्रोत्साहित किया है। अमरु के अनुकरण पर 40 कवयित्रियों के शृंगारी मुक्तक मिलते हैं।

कुमारदास ई० 750

सिंहल नरेश कुमारदास ने 'जानकीहरण' लिखा। यह पूरा उपलब्ध नहीं होता। कहा जाता है कि कालीदास ने जानकीहरण की बड़ी प्रशंशा की, जिसे सुनकर कुमारदास ने कालिदास को सिंहल बुलाया और कालिदास राजा के आग्रह करने पर लंका गये और वहाँ किसी सुन्दरी के यहां इनका आना जाना प्रारम्भ हुआ। दुर्भाग्य वश कालिदास पकड़े गये और मार डाले गये। मित्र की मृत्यु के कारण प्रेम से विह्वल होकर कुमारदास ने कालीदास की चिन्ता के ऊपर आत्मघात कर डाला। काव्यमीमाँसा की एक दन्तकथा के अनुसार यह जन्मान्ध थे। यह ब्राह्मण कवि तथा राजा थे। जानकी हरण कुमारदास को एक मात्र रचना है। सिंहल की जनश्रुति के अनुसार कुमारदास ने सिंहल पर1 वर्ष राज्य करने के उपरान्त कालिदास की चिता पर आत्मघात किया। इन्होंने 25 सर्गों का जानकीहरण नामक महाकाव्य लिखा जिसके अब 15 ही सर्ग उपलब्ध होते हैं। कुमारदास के सम्बन्ध में 1राजशेखर (9 शताब्दी) की एक श्लोकोक्ति है कि 'रघुवंश की विद्यमानता में 'जानकी हरण' करने को कुशलता या तो रावण में ही थी या कुमारदास में ही देखी गई।

अनुप्रास कवि का प्रिय अलंकार है।

---

1 जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
कवि कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमो ॥

माघ ई० 750

सुप्रसिद्ध महाकाव्य शिशुपालवध के रचयिता माघ थे। उनके पिता का नाम दत्तकसर्वाश्रय था और पितामह सुप्रभदेव था यह वर्मलात नामक राजा के मंत्री थे। माघ व्याकरण, राजनीति, साँख्य, योग, बौद्ध न्याय, वेद, पुराण, अलंकार शास्त्र, काम शास्त्र, और संगीतादि अनेक विषयों के पारंगत विद्वान् थे। यह जाति के श्रीमाली ब्राह्मण थे। यह कवि गुर्जर देश की उत्तर सीमा पर दक्षिण मारवाड़ में आबू का पहाड़ और लूनी नदी के बीच में विद्यमान गुजरात की राजधानी भीनमाल में जन्मा था। इस नगर का निवासी प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त भी था। यह माघ कवि भोज द्वितीय के समकालिक थे। भोज ने चित्तौड़ में 650 ई० से 675 ई० तक राज्य किया था और वह माघ कवि का बड़ा मित्र था। माघ वैष्णव थे। इनके काव्य की कथा श्रीमद्भागवत के आधार पर है।

मालिनी छन्द के तो माघ रससिद्ध आचार्य थे। कालिदास मूलतः कवि थे। भारवि राजनीति के ज्ञाता थे। भट्टि कोरे वैय्याकरण, श्रीहर्ष का पाण्डित्य भी विशेषतः दर्शन में अधिक जान पड़ता है पर माघ सर्वतन्त्र स्वतन्त्र थे और स्वयं माघ बड़े धनाढ्य दानी और दर्बारी कवि थे। भारवि की भाँति माघ की भी केवल एक ही रचना है।

माघ ने २० सर्गों में शिशुपालवध नामक महाकाव्य की रचना की। इसमें युधिष्ठिर द्वारा किये गये राजसूय यज्ञ का वर्णन है और कृष्ण के द्वारा शिशुपाल के वध का वर्णन है।

यह काव्य भारवि के किरातार्जुनीय के अनुकरण पर बना है। भारवि के अतिरिक्त माघ भट्टि के भी ऋणी हैं। पाण्डित्य में माघ निश्चित रूप से कालिदास, भारवि, भट्टि और श्री हर्ष से अधिक दिखाई पड़ते हैं। माघ का आदर्श भारवि कृत किरातार्जुनीय था यह

बात दोनों ग्रन्थों की तुलना करने से स्पष्ट विदित हो जाती है। (1) दोनों महाकाव्यों की कथा महाभारत से ली गई है। (2) दोनों महाकाव्यों का आरम्भ 'श्री' शब्द से होता है। (3) दोनों के प्रथम सर्ग में सन्देश कथन है। किरात में बनेचर के द्वारा युधिष्ठिर के प्रति, माघ में नारद के द्वारा कृष्ण के प्रति (4) किरात के द्वितीय सर्ग में युधिष्ठिर, भीम और द्रौपदी के बीच राजनीति विषयक संवाद होता है तो माघ के द्वितीय सर्ग में वलराम, कृष्ण और उद्धव के बीच राजनीति सम्बन्धी चर्चा होती है। (5) किरात में महर्षिवेदव्यास पाण्डवों को मार्ग सुलझाते हैं तो माघ में नारद ऐसा ही उपदेश करते हैं। (6) किरात में अर्जुन और इन्द्र नील पर्वत पर तपस्या करने जाते हैं तो माघ में श्रीकृष्ण रैवत पर्वत के समीप ठहरते हैं। (7) किरात में यदि हिमालय का यमकालंकारों में वर्णन है तो माघ में इसी प्रकार रैवत पर्वत का वर्णन है।(8) दोनोंमें अप्सराओं के विहार का चारुवर्णन है। (9) किरात में किरातवेषधारी शिव अर्जुन का अपमान करने के लिये दूत भेजते हैं तो माघ में शिशुपाल श्रीकृष्ण का अनादार करने के लिये दूत भेजते हैं। (10) किरात के 13वें 14वें सर्ग में अर्जुन तथा किरात रूपधारी शिव में वादविवाद हुआ तो माघ में 16 सर्ग में ऐसा ही वाद विवाद शिशुपाल के दूत और सात्यकि में हुआ। (11) किरात के 15 सर्ग और माघ के 11 सर्ग में चित्रबन्धनों द्वारा युद्ध वर्णन है। (12) दोनों में सन्ध्याकाल, राज, चन्द्रोदय, ऋतुओं एवं यात्रा का यथा स्थान वर्णन है। (13) भारवि ने किरात के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य में लक्ष्मी शब्द का प्रयोग किया है तो माघ ने इसी प्रकार अपने काव्य के सर्गान्ति पद्यों में श्री शब्द का प्रयोग किया है। (14) दोनों काव्यों में द्वन्द्व-युद्ध के पूर्व विपक्षियों की सेनाओं में युद्ध होता है। (15) दोनों

आदि श्लोक 1'श्रियः' से प्रारम्भ होता है। (16) दोनों में मंगलाचरण का श्लोक नहीं है।

भारवि ने अपनी प्रतिभा की प्रखरता सूचित करने के लिए भारवि (सूर्य का तेज)नाम रखा। उसी भान्ति शिशुपालवध के अज्ञात नाम रचियता ने अपनी कविता से भारवि को ध्वंस करने के लिये माघ का नाम धारण किया क्योंकि माघ में सूर्य की किरणें ठंडी पड़ जाती हैं। यह कल्पना निराधार है क्योंकि शिशुपालवध के कर्ता का नाम ही माघ था। माघ बड़ा भारी दानी था। लोग इसे राजा कर्ण कहा करते थे। एकवार इन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति दान में दे डाली। निर्धन होने पर चित्तौराधिपति महाराज भोज जो उनके परम मित्र थे उन्हें एक पद्य लिखकर अपनी स्त्री के हाथ भेजा। भोज ने पद्य को पढ़कर प्रचुर धन माघ की पत्नी को दिया उसे लेकर वह चली। रास्तेमें उसने दरिद्रों को वह धन बांट दिया। माघ के पास पहुंचने तक उसके पास एक कौड़ी भी न बची और याचकों का तांता बंधा ही रहा कोई उपाय न देखकर माघ ने अपने प्राण छोड़दिये। माघ की पत्नी भी पति के साथ सती हो गई। माघ का समय निर्धारित करने के लिये शिशुपालवध के दूसरे सर्ग में एक श्लोक लिखा है2 जिसमें श्लेष के द्वारा राजनीति की समता व्याकरण शास्त्र से की गई है। इस श्लोक में 'काशिकावृत्ति' और'न्यास' नामक दो व्याकरण ग्रंथोंकी ओर स्पष्ट संकेत किया गया है। मल्लिनाथ और वल्लभदेव टीकाकारों ने इस संकेत का स्पष्ट उल्लेख किया है। जिनेद्रवुद्धि कृत न्यास टीका से है। जिनकी रचना लगभग 780 ई०

---

1. श्रियः कुरूणामधिपस्य पलिनीम्, किराते।
श्रियः पतिः श्रीमति शासितुम्, माघे ।।

2. अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निवन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ।।२/११२

में हुई । विद्वानों का कहना है कि माघ ने1 नौ सर्गों में संस्कृत शब्दों का खजाना खाली कर दिया । शिशुपालवध में 20 सर्ग और 1650 श्लोक हैं। माघ के काव्य का अंगीरस वीर है और शृंगार रस इस का अंग है । पर शृंगार रस ने वीर रस को अधिक दबोच लिया है। कालिदास का काव्य शेक्सपियर की भांति भावप्रधान है तो माघ का काव्य मिलटनकी भांति अत्यधिक अलंकृत है। इसपर 17 टीकायें लिखी गई हैं । पर मल्लिनाथ की'सर्वांकषा'और वल्लभदेव की सन्देहविषौषधि बड़ी प्रसिद्ध हैं । माघ के आगे अन्य काव्य फीके पड़ जाते हैं और यह अन्य काव्यों की अपेक्षा अधिक 2कठिन है । 3जिस प्रकार माघ के ठिठुरते जाड़े में बन्दर सूर्य का स्मरण करके उछल कूद नहीं मचाते उसी प्रकार माघ की रचना के सामने बड़े-बड़े कवियों का पद योजना करने का उत्साह ठण्डा पड़ जाता है । चाहे वह भारवि के पदों का कितना ही स्मरण करें ।

दामोदर गुप्त ई0 779

इसका विरचित 'कुट्टनीमत' नाम का काव्य है । यह काश्मीर के राजा जयापीड़ का मंत्री था । राजतरंगिणी से यह ज्ञात होता है कि जयापीड़ से पूर्ववर्ती दो या तीन राजा बहुत विलासी और विषयासक्त थे और जयापीड़ भो पिछली आयु में विषयाक्त होगया । इसका उत्तराधिकारी राजा ललितादित्य का भी यही हाल था । इससे ज्ञात होता है कि उस समय काश्मीर में विषयलोलुपता बहुत बढ़ गई थी । इस लोलुपता से राजाओं को बचाने के लिए दामोदरगुप्त ने इस कुट्टनीमत

1. नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते ।
2. माघेन च माघेन कम्पः कस्य न जायते ।
3. माघेन विघ्नोतोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे ।
   स्मरन्तो भारवेरेवं कवयः कपयो यथा ।।

नामक काव्य की रचना की। कवि स्वयं अपने ग्रंथ के 1अन्त में कहता है।

कुट्टनीमत—इस काव्य में 1059 आर्याएं हैं। इसमें कोकशास्त्र का विषय है। संस्कृत साहित्य में इस प्रकार के बहुत कम ग्रंथ हैं। इसमें इस विषय के प्राचीन विद्वानों के बहुत से नाम दिये हैं उनमें वात्स्यायन दत्तकाचार्य्य, विशाखिल, दन्तिल और मातंगादि हैं। मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में और टीकाकारों ने भी अपने ग्रंथ में इस काव्य की आर्य्याएं उद्धृत की हैं।

पुष्पदन्त ई० 800

इसका विरचित शिवमहिम्नः स्तोत्र है। पुष्पदन्त के विषय में कहा है कि वह शिवजी के गणों में प्रधान था और कुसुमदशन नाम का सब गन्धर्वों का राजा था पर शिव के कोप से भूतल पर जन्मा था। इस स्तोत्र द्वारा शिवजी को प्रसन्न कर पुनः अपने पद पर पहुंचा था। बृहत्कथामंजरी, कथासरित्सागर और हरचरित चिन्तामणि में किसी पुष्प दन्त का वर्णन मिलता है। इस स्त्रोत्र का निर्देश नैय्यायिक जयन्त भट्ट ने अपनी न्याय मंजरी में भी किया है।

महिम्नः स्तोत्र—यह एक प्रसिद्ध स्तोत्र है। इसमें 40 श्लोक हैं। उपसंहार के 8 श्लोक हैं। इसमें शंकर की स्तुति है। इसमें साँख्य, योग, पाशुपतमत और वैष्णव मत का भी निर्देश है। यह स्तोत्र शिखरिणी छन्द में है। इस पर वोपदेव की टीका सबसे प्राचीन है। श्रीधर स्वामी की भी टीका है।

---

1. काव्यमिदं यः शृणुते सम्यक् काव्यार्थपालनेनाऽसौ।
नो वंच्यते कदाचिद् विड्वेश्याधूर्तकुट्टनीभिः इति॥

मूक कवि ई० 800

मूक कवि शंकराचार्य का समकालिक था। वह जन्म से ही मूक था। इसने कम्पातीर के कांचीपुरी की कामाक्षीदेवी का वर्णन किया है। इससे यह दाक्षिणात्य प्रतीत होता है। इसने 500 सुन्दर गेय पद्यों में मूक पंचशती गीति काव्य लिखा।

आदि शंकराचार्य्य ई० 800

अद्वैत वेदान्त मत प्रवर्तक आदि शंकराचार्य्य का जन्म मालाबार में हुआ था। 32 वर्ष की आयु में उन्होंने बौद्ध मत का भारत में समूल नाशकर श्रुति स्मृति प्रतिपादित अद्वैत मत की स्थापना की और भारत में 4 मठों की स्थापना की और शृंगेरी मठ में स्वयं सुशोभित हुए। इनके पिता का नाम शिवगुरु था। गौड़पाद इनके परम गुरु और गोविन्द इनके गुरु थे। इन मठों पर जितने भी आचार्य्य बैठे वह सब शंकराचार्य्य के ही नाम से विख्यात हैं। इसलिये जितने स्तोत्र परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री शंकराचार्य्य विरचित हैं वह सब आदि शंकराचार्य्य विरचित नहीं हो सकते। आदि शंकराचार्य्य ने अपने ग्रंथों के उहसंपार में भगवत् पूज्यपाद गोविन्द शिष्य ऐसा विशेषण अपने नाम के पूर्व दिया है। इसलिये (1) ब्रह्मसूत्र शाँकरभाष्य, (2) उपनिषद् भाष्य, (3) गीताभाष्य जिन्हें प्रस्थानत्रयी कहते हैं। यह ग्रंथ आद्य-शंकराचार्य्य विरचित हैं और इनके अतिरिक्त वेदान्त के और भी ग्रंथ तथा कई स्तोत्र भी हैं। स्तोत्रों में जितने स्तोत्र दक्षिणामूर्ति के उपलब्ध हैं वह सब आदि शंकराचार्य्य के हैं और कुछ पर उनके शिष्य सुरेश्वराचार्य्य की टीका भी है।

वाक्पति राज ई० 800

इस का विरचित गउडवहो नाम का प्राकृत महाकाव्य है। भवभूति और वाक्पति राज दोनों कन्नौज के राजा यशोवर्मा के सभा पंडित थे। ऐसा कल्हण ने अपनी राजतंरगिणी में कहा है। यशोवंमा ने

काश्मीर पर आक्रमण किया और वहाँ के राजा मुक्तापीड़ ललितादित्य से मारा गया। वाक्पति राज ने यह काव्य यशोवर्मा के मृत्यु से पूर्व ही लिखा था। इस काव्य के लिखने का प्रयोजन, बंग का गौड़ राजा यशोवर्मा के हाथ से मारा गया इसलिये अपने स्वामी का यश गायन यही था। काश्मीर में यशोवर्मा के वध के बाद इस काव्य को पूरा न कर सका यह अधूरा ही रह गया। इस काव्य में कवि ने अपने पूर्ववर्ती अनेक कवियों के नाम भी दिये हैं। ऐसा कहा जाता है कि भवभूति वाक्पति राज का गुरु था। इनके पिता का नाम हर्षदेव था। इस काव्य पर 'उपेन्द्रहर्षपालित' विरचित टीका है।

शंकु ई० 800

इसका विरचित 'भुवनाभ्युदय' काव्य है। काश्मीर के राजा जयापीड़ के बाद अजितापीड़ गद्दी पर बैठा था। इस अजितापीड़ के पाँच मातुलों ने इसको गद्दी पर बैठाया था। उनमें से मम्म और उत्पल में ऐसा युद्ध हुआ था कि झेलम नदी का पानी खून से लाल हो गया था। इसी युद्ध के उपलक्ष्य में काश्मीर के कवि शंकु ने भुवनाभ्युदय काव्य की रचना की। यह वही शंकु है जिसका उल्लेख काव्यप्रकाशकार मम्मट भट ने रस निरूपण में किया है। इसका विरचित अलंकार शास्त्र का कोई ग्रन्थ अवश्य था जो आज तक उपलब्ध नहीं है। विक्रमादित्य के नवरत्नों में भी शंकु का नाम आया है और मयूर कवि के पुत्र का नाम भी शंकु था पर यह शंकु इन दोनों से भिन्न है।

भुवनाभ्युदय—यह एक काव्य है। इसमें उत्पल और मम्म का जो काश्मीर के राजा अजितापीड़ के मातुल थे भयंकर युद्ध वर्णित है। कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी में इस विषय पर कहा है।

अथ मम्मोत्पलकयोरुदभूद् दारुणोरणः
रुद्धप्रवाहा यत्रासीद् वितस्ता सुभटैर्हतैः।

कविर्बुधमनः सिन्धुशशाङ्कः शंकुकाभिधः
यमुद्दिश्याऽकरोत् काव्यं भुवनाभ्युदयाभिधम् ॥

रत्नाकर ई० 850

रत्नाकार ने 50 सर्गों में हरविजय नामक महाकाव्य लिखा । वह काश्मीर के जयादित्य और अवन्ति वर्मा का आश्रित कवि था । उसकी उपाधि राजानक थी । इसके काव्य में 4320 श्लोक हैं । इसमें शिव के द्वारा अन्धक नामक राक्षस के वध का वर्णन है । अन्धक जन्मान्ध था उसने तपस्या की और शक्ति प्राप्त करके संसार का स्वामी बन बैठा । इससे भयभीत होकर देवताओं ने शिवसे सहायता माँगी । शिवने स्वयं जाकर उस राक्षस का वध किया । काव्य की दृष्टि से यह उच्चकोटि का काव्य नहीं पर नृत्य के सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन होने के कारण बहुमूल्य ग्रन्थ है । इसके पिता का नाम अमृतभानु था । रत्नाकर के विषय में सुभाषित2 मिलता है । क्षेमेन्द्र ने अपने सुवृत्ततिलक में रत्नाकर के वसन्त तिलकवृत्त3 की बड़ी प्रशंसा की है । काश्मीर के विद्या सेवी राजाओं में जयापीड़4 का नाम स्मरणीय है । राजतरगिणी में लिखा है जिस प्रकार गुप्त हुई वितस्ता नदी को कश्यप ने फिर से काश्मीर में प्रकट किया उसी प्रकार विलुप्त हुई संपूर्ण विद्याओं को जयापीड़ ने पुनर्जीवित किया। रत्नाकर दीर्घायु भी था । माघ की भाँति रत्नाकर ने प्रत्येक श्लोक के अन्तिम सर्ग में 'रत्न' शब्द का प्रयोग किया है ।

---

1 मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः ।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ॥

2 मा स्म सन्तु हि चत्वारः प्रायो रत्नकरा इमे ।
इतीव सत्कृतो धात्रा कवीरत्नाकरोऽपरः ॥

3 वसन्ततिलकारूढा वाग्वल्ली गाढसगिनी ।
रत्नाकरस्योत्कलिका चकास्त्याननकानने ॥

4 नितान्तं कृतकृत्यस्य गुणवृद्धिविधायिनः ।
श्री जयापीड़देवस्य पाणिनेश्च किमन्तरम् ॥

अभिनन्द ई० 900

इसका विरचित 'कादम्बरीकथासार' नाम का काव्य है। यह प्रसिद्ध नैयायिक जयन्तभट्ट का पुत्र था। जिन्होंने न्यायमंजरी लिखी। अभिनन्द का दूसरा ग्रन्थ योगवासिष्ठसार है। यह भारद्वाज गोत्री और काश्मीर का रहने वाला था।

कादम्बरी कथा सार—यह बाण भट्ट की कादम्बरी का पद्य में संक्षिप्त कथा वर्णन है। यह बात1 कवि ने भी ग्रन्थाकारम्भ में कही। इस काव्य के 8 सर्ग हैं। यह काव्य अनुष्टुप् छंदमें ही रचा गया है। इस कवि के अनुष्टुप् छंद की प्रशंसा2 क्षेमेन्द्र ने अपने सुवृत्ततिलक में की है। इसमें प्रसाद और माधुर्य गुण सर्वत्र विद्यमान हैं। इस काव्य के पढ़ने से बाण भट्ट की कादम्बरी की कथा पूर्णतया अवगत होती है।

हरिचन्द्र ई० 900

इसका विरचित धर्म-शर्माभ्युदय नाम का महाकाव्य है यह कवि दिगम्बर जैन मतानुयायी था। वह कायस्थ कुल में उत्पन्न हुआ था। इनके पिता का नाम आर्द्रदेव और माता का नाम रथ्या था इसके छोटे भाई का नाम लक्ष्मण था। हरिचन्द्र नाम के दो कवि प्रसिद्ध हैं। एक हर्ष3 चरित में वर्णित भट्टार हरिचन्द्र है जिसके गद्य बन्ध की बाण ने बडी प्रशंसा की है और यह गृहस्थत्यक्त कोई राजकुमार था। जैनी नहीं था। दूसरा विश्वप्रकाश कोष के कर्ता महेश्वर का पूर्व पुरुष चरक संहिता का टीकाकार साहसाँक-नृपति का प्रधानवैद्य हरिचन्द्र था।

---

1 काव्यविस्तारसंधान खेदालसधियः प्रति।
तेन कादम्बरीसिन्धोः कथा मात्रं समुद्धृतम्॥

2 अनुष्टुप् सतता सक्ता साभिनन्दस्य नन्दिनी।
विद्याधरस्य वदने गुलिकेव प्रभावभूः॥

3 भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते

प्रस्तुत हरिश्चन्द्र इन दोनों से भिन्न है। इसके 'काव्य धर्मशर्माभ्युदय' में 21 सर्ग हैं। इसमें 15वें जैन तीर्थङ्कर धर्मनाथ का चरित्र वर्णन है। इस काव्य पर कवि विरचित टिप्पणी भी है।

शिवस्वामी ई० 900

इनका विरचित बौद्ध महाकाव्य 'कफ्फणाभ्युदय' नाम का है। यह काश्मीर में अवन्ति वर्मा के समय विद्यमान था। कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी में कहा है कि यह काव्य और नाटक दोनों का रचयिता था। इसने अपने काव्य में हर्षवर्धन के नागानन्द का निर्देश किया है। क्षेमेन्द्र के कविकण्ठाभरण में इसके विरचित श्लोक मिलते हैं। ई० 15वीं शताब्दी में अमर कोष टीका पदचन्द्रिका के रचयिता रायमुकुट और 16वीं शताब्दी में 'मनोरमा-का-तन्त्र के गण धातु वृत्तिकार' रायि रमानाथ शिव ने स्वामी का उल्लेख किया है।

कफ्फणाभ्युदय—यह एक बौद्ध पौराणिक महाकाव्य है।

यह बौद्धों के 'अवदान शतक' की कथा के आधार पर रचा गया है। कफ्फण नाम का एक दक्षिणी राजा श्रावस्ति के बौद्ध राजा पर आक्रमण करने के विचार में था परन्तु बौद्धों ने इसको अपने धर्म का उपदेश कर किस प्रकार उसको बौद्ध धर्म की दीक्षा दी इसका वर्णन इस महाकाव्य में है। इस काव्य के 20 सर्ग हैं। इसमें रचयिता ने अपनी संस्कृत की पाण्डित्य का पूर्ण रूप से परिचय दिया है।

हलायुध ई० 950

इसका विरचित 'कविरहस्य' नामक काव्य है। यह ब्राह्मण कवि राष्ट्र-कूट (राठौर) के तृतीय कृष्ण राजा का सभा पंडित था। यह वैष्णव था, यह बात काव्य के मंगलाचरण से ज्ञात होती है। पिंगल छन्द-सूत्र की मृतसंजीवनी नाम की टीका में जिसका रचयिता भी भट्ट हलायुध है। कई श्लोक धार के वाक्पतिराज (मुंज) की प्रशंसा में लिखे हैं। बहुत सम्भव है कि कवि कृष्णराज की मृत्यु के बाद मुंज

राजा की सभा में चला गया हो और वहाँ इस टीका की रचना की हो। यह एक अच्छा वैय्याकरण भी था।

कविरहस्य—यह काव्य धातुओं के लट् लकार के भिन्न-भिन्न रूपों को विशद करता है और साथ-साथ राष्ट्रकूट के राजा तृतीय कृष्ण की प्रशंसा भी करता है। इसमें 274 श्लोक हैं। प्रायः अनुष्टुप छन्द हैं। भट्टोजीदीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी में इस ग्रंथ के श्लोक उदधृत किये हैं।

पद्मगुप्त ई० 1000

इसका विरचित महाकाव्य 'नवसाहसाङ्कचरित' नाम का है। यह कवि मालवा के सिन्धुराज (नवसाहसाङ्क) का सभापंडित था। सिन्धुराज मुंज राजा का उत्तराधिकारी था। इसने ई० 995 से 1018 तक मालवे का राज्य किया। कवि ने ग्रन्थ के आरम्भ में अपना और राजा मुंज का सहवास सिद्ध किया है। ग्रंथके उपसंहार से यह पता चलता है कि उसके पिता का नाम मृगाङ्क गुप्त था। इसने अपने काव्य में भर्तृमेण्ठ वाक्पतिराज का उल्लेख किया है। इसने काव्य के मंगलाचरण में शिव के भूषणों में से चन्द्र, गणेश और नेत्र का वर्णन किया है। इससे मालूम होता है कि यह शैव था। इसने अपने काव्य में अपने संरक्षक सिन्धुराज (नवसाहसाङ्क) का अति विस्तृत वर्णन किया है।

'नवसाहसाङ्कचरित'—यह एक महाकाव्य है। इसमें 18 सर्ग हैं। इस ग्रंथ की नायिका शशिप्रभा नाम की है। जिसका लाभ नवसाहसाङ्क को किस प्रकार हुआ इसका वर्णन है। यह नायिका ऐतिहासिक होने से काव्य भी ऐतिहासिक है। इसकी रचना वैदर्भी रीति में है। समें 1500 के करीब श्लोक हैं। यह काव्य बड़ा सरल है।

क्षेमेन्द्र ई0 1052 से 1080 तक

इनका दूसरा नाम व्यासदास था यह काश्मीरी थे। इन्होंने कम से कम 35 ग्रंथ लिखे हैं इनकी प्रसिद्धि अलंकारिकों में है। इनका विरचित शशीवंश महाकाव्य है परन्तु वह उपलब्ध नहीं है। इन्होंने अनेक काव्य बनाये हैं। उनमें दशावतारचरित, समयमातृकाकाव्य, पद्यकादम्बरी, बृहत्कथामंजरी, भारतमंजरी, बौद्धावदानकल्पलता, मुक्तावली काव्य, रामायण कथासार, लावण्यवती काव्यालोकप्रकाशादि हैं। इनके विरचित अनेक स्तोत्र भी हैं। इनके अतिरिक्त इनके ग्रंथों से मालूम होता है कि यह काश्मीर के राजा 'अनन्त' का सभा पंडित था और अनन्त के पश्चात् राजा कलश के समय में भी उपस्थित था। यह पहले शैव थे किन्तु सोमपाद से भागवत दीक्षा लेने पर वैष्णव हो गये। इनके पिता का नाम प्रकाशेन्द्र, पितामह का सिन्धु और गुरु का नाम गंगक था। बृहत् कथा मंजरी तथा भारत मंजरी से ज्ञात होता है कि इसने अभिनवगुप्त से साहित्य पढ़ा था।

दशावतारचरित—इसमें विष्णु के 10 अवतारों का वर्णन है। यह काव्य 10 विभागों में विभक्त है और प्रत्येक विभाग में एक-एक अवतार का वर्णन है। इसकी रचना राजा कलश के समय काश्मीर में हुई ऐसा कवि ने स्वयं ग्रंथ के अन्त में कहा है।

भारत मंजरी--इस ग्रंथ में सम्पूर्ण महाभारत की कथा का संक्षेप से वर्णन है। ग्रन्थ के अन्त में प्रशस्ति से ज्ञात होता है किसी रामयश नामक ब्राह्मण के प्रार्थना करने पर भारत मंजरी की कवि ने रचना की थी। ब्राह्मण की प्रार्थना के बाद सत्यवती के पुत्र वेदव्यास जी ने कवि को स्वप्न में दर्शन देकर अनुगृहीत किया। इसीलिये पहले व्यासाष्टक निर्माण कर पश्चात् कवि ने इस काव्य की रचना की। इसका विभाग भी महाभारत के सदृश 18 पर्वों में है।

रामायण मंजरी—यह वाल्मीकि रामायण का संक्षिप्त कथा काव्य है। यह भी कवि ने उसी रामयश ब्राह्मण की प्रार्थना पर लिखी थी। इसमें यह काव्य वाल्मीकि रामायण की तरह 7 काण्डों में विभक्त है। वृहत् कथा मंजरी—यह काव्य गुणाढय के वृहत् कथा का संक्षेप है। गुणाढ्य की वृहत् कथा पैशाची प्राकृत में लिखी गई थी और बहुत लोग पिशाच बाधा के डर से उसे नहीं पढ़ते थे। इसलिए कवि ने इस ग्रन्थ में संस्कृत में सब के पढ़ने योग्य अनुष्टुप् छंद में उन क्रियाओं को लिखा। कवि ने1 स्वयं कहा है। वृहत् कथा को जो कि पैशाची प्राकृत भाषा में होने के कारण गहरे गड़हे में पड़ी हुई गंगा नदी के समान थी। उसे संस्कृत में अनुवादित कर सम प्रदेश में उस गंगा को प्रवाहित कर दिया जिससे सर्वसाधारण उससे लाभ उठाले।

'क्षेमेन्द्र ने औचित्य2 विचार चर्चा और कविकण्ठाभरणनाम के दो ग्रन्थ और लिखे थे। छंद शास्त्र पर 'सुवृत्त तिलक' लिखा जो कि औचित्य विचार चर्चा का ही एक अंग है। यह सर्वतोमुखी प्रतिभा के विद्वन् थे।

लोलिम्बराज ई 1050

इसका विरचित 'हरिविलास' नाम का काव्य है। यह आयुर्वेद और गायन शास्त्र का भी भारी विद्वान् था। यह राजा सूर्य के पुत्र राजा हरिहर की सभा का पंडित था। इसके पिता का नाम दिवाकर और वह भी हरिहर राजा का ही अश्रित था। राजा हरिहर की आज्ञा से ही लोलिम्वराज ने हरिविलास महाकाव्य की रचना की। हरिविलास

---

1 अथो सुखं निषेव्याऽसौ कृता संस्कृतया गिरा।
समां भुवमिवानीता गंगा श्वभ्रावलम्बिनी ।।

2 उचितं प्राहुराचर्य्याः सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावः तदौचित्यं प्रचक्षते ।।

में राधिका शब्द का प्रयोग है जो भागवत में तथा उसके पूर्व के ग्रन्थों में नहीं मिलता। इस कवि के विरचित आयुर्वेद के 5 या 6 ग्रन्थों में वैद्यजीवन बहुत प्रसिद्ध है।

हरिविलास—यह एक पाँच सर्गों का छोटा सा काव्य है। इसमें कृष्ण की बाल लीला नन्द के घर से आने से लेकर उद्धव सन्देश तक वर्णित है। कवि ने अपने आपको कविनायक कहा है।

हेमचन्द्राचार्य्य ई० 1088

यह प्रसिद्ध श्वेताम्बर जैन था और प्रकाण्ड विद्वान माना जाता है। इसके विरचित 'त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित' द्वयाश्रयमहाकाव्य है इसका जन्म धुंदुक नाम के ग्राम में हुआ जो गुजरात के आमदाबाद जिले में है। इनकी जन्म तिथि और संवत् 1088 कार्तिक की पूर्णिमा को हुआ। इनके पिता का नाम चचिग और माता का नाम वाहिनी था। यह गरीब मोढ़ बनिये थे। इनकी प्रौढ़ विद्वत्ता के कारण लोग इनको 'कलिकालसर्वज्ञ' कहते थे। यह अणहिलबाड़ (पाटन) के राजा जयसिंह के भतीजे कुमारपाल का गुरु था। जयसिंह विद्वत्प्रेमी रहने के कारण उसने हेमचन्द्र को अपने दर्बार में आश्रय दिया था किन्तु वह शैव था उसने जैन धर्म की दीक्षा नहीं ली थी पर कुमारपाल ने इन से दीक्षा ली हुई थी। कुमारपाल की प्रार्थना पर इन्होंने 'हैमयोगानुशासन' नामक योग ग्रन्थ लिखा। जयसिंह की प्रार्थना पर व्याकरण का 'शब्दानुशासन' ग्रन्थ तथा उसकी बृहद्वृत्ति नाम की टीका भी बनाई 'लघुअर्हन्नीति' भी इनकी विरचित है।

त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित—यह महा काव्य 10 पर्वों में है। यह बड़ा विस्तृत काव्य है ई० 1160 से 1772 के बीच इसकी रचना हुई। इसमें 63 जैन धर्म के महापुरुषों का जीवन चरित्र है। इन 63 महापुरुषों में 42 तीर्थङ्कर, 12 चक्रवर्ती, 9 वासुदेव, 9 बलदेव, और

९ विष्णुद्विट् हैं । काव्य के विस्तृत होने से यह कुछ अरोचक सा होगया है । इसकी भाषा सरल है अन्तिम पर्वमें महावीर-वर्द्धमान का जीवन-चरित्र वर्णित है । यह काव्य महाभारत के ढंग पर लिखा गया है ।

द्वयाश्रय महाकाव्य या कुमार पाल चरित—इसमें कुमार पाल के जीवन का वर्णन है । इसमें 28 सर्गों में 20 सर्ग संस्कृत और 8 सर्ग प्राकृत में हैं यह ऐतिहासिक काव्य होता हुआ भी भट्टि काव्य के समान व्याकरण के प्रयोगों को विशुद्ध करने वाला शास्त्र काव्य है । इसलिये इसको द्वयाश्रय महाकाव्य भी कहते हैं । इसमें चालुक्य-वंशीय राजाओं का भी इतिहास है । इस काव्य पर 'अभयतिलकगणी' विरचित टीका है । प्राकृत के 8 सर्गों पर पूर्ण कलशगणी विरचित टीका । और लक्ष्मी तिलकगणी ने इन दोनों टीकाओं का संशोधन किया था । यह तीनों जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे ।

जयदेव ई० 1100

जयदेव में हमें संगीत और पदलालित्य के अपूर्व गुण मिलते हैं । जयदेव भोजदेव[1] तथा राधादेवी के पुत्र थे । ये बंगाल के सेन वंश के अन्तिम राजा लक्ष्मणसेन के राज कवि थे । लक्ष्मणसेन की सभा में जयदेव से अतिरिक्त और भी कई कवि थे जिनमें मुख्य उमापतिधर, आर्य्यासप्तशती के रचयिता गोवर्धन, पवनदूत के लेखक कवि धोई आदि थे । जयदेव के आश्रयदाता लक्ष्मणसेन स्वयं भी कवि थे । उनके नाम से कई पद्य सुभाषितों में मिलते हैं । ईसा की 12 वीं सदी में

---

१. श्रीभोजदेवप्रभवस्य राधादेवीसुतश्री जयदेवकस्य ।
पाराशरादिप्रियवर्गकण्ठे श्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु ।।

बंगाल में कृष्ण राधिका की शृंगारी उपासना का उदय हो रहा था। ऐतिहासिक दृष्टि से इस काल में राधा-कृष्ण की शृंगारी उपासना का विकास बौद्ध तान्त्रिक पद्धति का प्रभाव माना जाता है। बौद्धों के वज्रयान सम्प्रदाय का ही यह दूसरा रूप है क्योंकि वज्रयान की साधना में स्त्री-संग और मदिरा अवश्य अंग माने जाते हैं इसी का प्रभाव शैवों और शाक्तों की साधन पद्धति पर पड़ा दूसरी ओर उसने, कृष्ण की शृंगारी उपासना को जन्म दिया ईसा की सातवीं या आठवीं सदी में बौद्धतान्त्रिकों के वज्रयानी संप्रदाय का प्रभाव सारे बंगाल में छाने लगा। इतिहासकारों का कहना है कि कृष्ण तथा राधिका आभीरों (भीलों) के देवता थे और महाभारत में राजनींति वाले कृष्ण अभीरों के बाल लीला रासादि करने वाले कृष्ण से भिन्न हैं। धीरे-धीरे महाभारत के कृष्ण का चरित्र आभीरों के कृष्ण से घुल-मिल गया। जो पशु-चारण करने वाली जातियों के बन देवता थे। राधा भी इन्हीं की देवी थी। राधा का समावेश भी कृष्ण के साथ ही साथ भागवत संप्रदाय में हो गया। सर्व-प्रथम भट्ट नारायण के वेणी संहार नाटक के मंगलाचरण (जिसे प्रायः प्रक्षिप्त माना जाता है) में तथा ध्वन्यालोक में उद्धृत एक पद्य में मिलता है।

यद्यपि साहित्य प्रतिष्ठापना के बीज छठी-सातवी के आस-पास ही माने जाते हैं, तथापि राधा के चरित्र को पूर्णतः पल्लपित करने में जयदेव के गीत गोविन्द का खास हाथ है। श्रीमद्भागवत में कृष्ण की शृंगारी लीला का प्रचुर वर्णन होने पर भी राधा का नाम नहीं मिलता। वैसे तो श्रीमद्भागवत के रचना काल के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता किन्तु उसकी शैली को देखकर इतना अनुमान किया जा सकता है कि वह ईसा की दसवीं या ग्यारहवी सदीं से पुरानी नहीं हो सकती। कई विद्वानों ने तो जयदेव के ही बड़े भाई

बोपदेव को श्रीमद्भागवत का रचयिता माना है जयदेवके गीत गोविन्द पर भी पर्याप्त प्रभाव जान पड़ता है। जयदेव की एकमात्र कृति गीत गोविन्द ही उनके नाम को साहित्य में अमर बनादेने के लिये पर्याप्त है इसमें 12 सर्ग हैं प्रत्येक सर्ग के आरम्भ में एक या अधिक पद्यों के द्वारा कवि राधा या कृष्ण की तत्तत् चेष्टादि का वर्णन करता है। सूर आदि अष्टछाप के कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण को राधा का उपपति न मानकर पति के रूप में चित्रित किया है।

जयदेव का जन्म बंगाल के किन्दुबिल्व ग्राम में हुआ। उनकी स्त्री का नाम पद्मावती था जो उनके गीतों के ताल पर नृत्य करती थी। (पद्मावती चरण चारण चक्रवर्ती) अनुप्रास प्रयोगों में जयदेव अद्वितीय हैं।

धोयी ई० 1200

मेघदूत का अनुकरण कर जिन सन्देश काव्यों' की रचनाहुई उनमें घोयी कृत 'पवनदूत' का प्रमुख स्थान है। यह बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन के आश्रित कवि थे। जयदेव ने अपने गीत गोविन्द में धोयी को श्रुतिधर कहा है। पवनदूत में 104 पद्य हैं। मेघदूत की भाँति पवनदूत में भी रचना मंदाक्रान्ता छन्द में की गई है। इस काव्य पर मेघदूत की छाया स्पष्ट देख पड़ती है। मौलिकता न होने पर भी यह सुन्दर काव्य है।

बिल्हण ई० 1100

इसकी जन्म-भूमि काश्मीर में प्रवरपुर के पास कोनमुख नाम का ग्राम था। किन्तु यह कल्याणी-चालुक्य वंश के छठे विक्रमादित्य का सभा पंडित था। जब बिल्हण ने काश्मीर को छोड़ा उस समय काश्मीर मैं कलश राजा का शासन था। यह कवि मथुरा-कन्नौज-प्रयाग, काशी होता हुआ चेदि के राजा कर्ण के दरबार में पहुंचा। उसके बाद अणहिलवाड़ (पाटन) के राजा के पास थोड़े दिन रहकर अन्त में

विक्रमादित्य के यहां पहुंचा । बिल्हण ने अपने समकालिक धारा के भोज का भी निर्देश किया है । इसी विक्रमादित्य ने बिल्हण को 'विद्या पति' की उपाधि दी थी । इसी राजा के सम्मान के लिये इनसे विक्र-माङ्कदेवचरित की रचना की थी । बिल्हण के पिता का नाम ज्येष्ठ कलश दादा का नाम राजकलश और पड़दादा का नाम मुक्तिकलाश था । ये सब श्रोत्रिय और अग्निहोत्री ब्राह्मण थे। इसकी माता का नाम नागदेवी था । इसके इष्टराम और आनन्द नाम के दो भाई बड़े विद्वान थे । विक्रमाङ्कदेवचरित के अतिरिक्त इसने चौरीपंचाशिका और कर्णसुन्दरी नाटिका भी लिखी । विक्रमांकदेवचरित—यह महाकाव्य है इसमें छठे विक्रमादित्य का जीवन चरित है इसलिये यह ऐतिहासिक काव्य कहा जाता है । इसमें 18 सर्ग हैं । इसमें अन्तिम 5 सर्गों में अपने पूर्वजों का वर्णन किया है । और अन्य सर्गों मैं विक्रमादित्य का वर्णन है ।

चौरीपंचाशिका—इसमें 'अद्यापि' पद से 50 श्लोकों का आरम्भ किया है । इस पर रामतर्कवागीश की टीका है ।

इसी चालुक्य विक्रमादित्य षष्ठ के निरीक्षण में 1120 ई० में विज्ञानेश्वर के द्वारा लिखी गई मिताक्षरा नाम की याज्ञवल्क्यस्मृति की टीका थी । याज्ञवल्क्यस्मृति का समय 100 ई० पूर्व से लेकर 300 ई० पूर्व के मध्य का है । इसपर प्रमुख तीन टीकायें हैं । विश्वरूप (800 ई० से 825 ई०) कृत बालक्रीडा है 12 शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अपरार्क द्वारा लिखो अपरार्कयाज्ञवल्कीयधर्म शास्त्रनिबन्ध टीका है । मिताक्षरा विधान के विषय में एक स्वतन्त्र और प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है । इस पर बालभट्ट जिसका दूसरा नाम बाल कृष्ण था वह नागेश के शिष्य वैय्याकरण वैद्यनाथ पायगुण्ड (1750 ई०) का पुत्र था । इस टीका का नाम लक्ष्मी व्याख्यान या बालंभट्टि है । यह टीका वैद्यनाथ की पत्नी लक्ष्मीबाई देवी के नाम से लिखी है । इसमें पैतृक सम्पत्ति पर स्त्रियों के अधिकार पर बहुत बल दिया गया है ।

श्री हर्ष ई० 1200

इनके पिता का नाम हीर और माता का नाम मामल्लदेवी था और यह कान्यकुब्ज (कन्नौज) के राजा विजयचन्द्र और जयचन्द्र के सभा पंडित थे। ऐसा चतुर्दश शतक में होनेवाले राजशेखर ने कहा है। इन्होंने नैषध महकाव्य की रचना की। यह कवि तो थे ही पर भारी दार्शनिक भी थे। इनका विरचित खण्डनखण्ड खाद्य नाम का वेदान्त का उच्च कोटि का ग्रंथ है। इसमें नैय्यायकों के प्रत्येक पदार्थ का बड़े जोर से खण्डन किया है। कई विद्वान जनश्रुति के आधार पर इन्हें प्रसिद्ध आलंकारिक मम्मट का भाँजा बतलाते हैं। हर्ष काश्मीर यात्रा में गये और उन्होंने यह काव्य मम्मट को दिखलाया। देखने पर पूछा कि मामाजी काव्य कैसा है। मम्मट बोले काव्य प्रकाश की रचना से पहले यह काव्य दिखलाते तो अपने दोष प्रकर्ण में इसी काव्य केसमस्त उदाहरण दे देता उनकी इस उक्ति से प्रतीत होता है कि इस काव्य में दोष अधिक हैं। मिथिला के प्रसिद्ध नैय्यायिक न्यायकुसुमाञ्जलीकार उदयनाचार्य्य का इसके पिता हीर से शास्त्रार्थ हुआ और वह बुरी तरह से परास्त हुए।[2]श्रीहर्ष को बुलाया और कहा कि यदि तुम मेरे पुत्र हो तो उदयनाचार्य्य को शास्त्रार्थ में बुरी तरह परास्त करना बस यही मेरी अन्तिम इच्छा है ऐसा कहकर पिता गोलोक सिधार गये श्रीहर्ष ने गंगातीरंत्रिपुरसुन्दरी की आराधना के लिये चिन्तामणि मंत्र[2] का एक वर्ष जव किया और बड़ा भारी विद्वान हो गया स्वयं हर्ष ने नैषध के 14 वें सर्ग के 90 वें श्लोक में इस विषय का प्रतिपादन किया है उदयनाचार्य्य को शास्त्रार्थ में बुरी तरह से हराया और पिता

---

१. श्री हर्षो वाराणस्यधिपते जंयन्तचन्द्रसभायाः सभ्योऽभूदिति।

२. इस पराजय से लज्जित होकर हीर ने अपना देह छोड़ दिया और मरते समय उन्होंने श्री हर्ष को बुलाया।

का बदला लिया[1]। कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द्र की सभा मैं श्रीहर्ष का बड़ा मान था और सभा में इन्हें आसन और पान के दो बीड़े दिये जाने का सम्मान था।

नैषधचरित—यह महाकाव्य अत्यन्त उच्च कोटि का माना जाता है। इसके प्रत्येक सर्ग में प्राय; 100 से अधिक श्लोक हैं। इसकी कथा महाभारत से ली है। इस काव्य के 22 सर्ग हैं। इनमें कथा पूर्ण न होने के कारण विद्वानों का अनुमान है कि इस काव्य के और भी सर्ग होंगे जो अनुपलब्ध हैं। इसके सम्पूर्ण सर्गों की संख्या 60 से लेकर 120 तक भिन्न-भिन्न विद्वानों के मतानुसार मानी जाती है। इस काव्य में कवि की कल्पना शक्ति वड़ी ही विलक्षण है। इस काव्य में सर्वत्र ही पौराणिक कथाओं का उल्लेख किया है। इससे मालूम हो ता है कि कवि का पुराणों पर अधिकार था। इस काव्य में अलंकारों की तो भरनार है और तर्क शास्त्र और काम शास्त्र का भी अच्छा परिचय मिलता है। इसमें वैदभी का अनुसरण क्रिया गया है। इस काव्य में अनेक गुण होते हुए भी कुछ क्लिष्टता आगई है। इसका श्लेष अत्यन्त श्लाघनीय है। इस काव्य में 19 छन्दों का प्रयोग हैं। सबसे अधिक उप जातिवृत्त है जिसमें 7 सर्ग लिखे गये हैं।

इस मन्त्र का जप करने वाला जिस किसी के सिर पर अपना हाथ रखदे वह भी एक दम कवि बनजाता और रमणीय पद्यों की रचना करने लगता है। हर्ष वर प्राप्त कर विजयचन्द्र की सभा में गये पर उनकी वाक्शैली को कोई भी न समझ सका। फलत: निराश होकर उन्होंने पुन: देवी की आराधना की। देवी ने प्रसन्न होकर कहा अच्छा रात को सिर गीला कर दही पी लेना। कफ के गिरने के साथ तुम्हारा पाण्डित्य कम हो जायेगा। श्री हर्ष ने ऐसा ही किया फिर राज सभा में जाकर।

तत् प्राप्ते वत्सरान्ते शिरसिकरमसौयस्य कस्यापि धत्ते।
सोऽपि श्लोकानकाण्डे रचयति रुचिरान् कौतुकं दृश्यमस्य ॥

१ ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्।

वंशस्थ के 4 सर्ग हैं इस महाकाव्य पर 23 टीकायें लिखी गईं। जिनमें सबसे पहली टीका विद्याधर विरचित साहित्य विद्याधारी है। काव्य प्रकाश की निर्दशन नाम की टीका लिखने वाले राजानक आनन्द की लिखी टीका बड़ी ही विद्वत्तापूर्ण है मल्लिनाथ की जीवातु और नारायण की नैषधप्रकाश टीकायें हैं। इन्होंने विजय प्रशस्ति, नव साहसांक चरित चम्पू आदि और भी ग्रन्थ लिखे पर नैषध और

श्री हर्ष के समय में उत्तरी भारत कई राज्यों में वटा हुआ। था अजमेर और दिल्ली के चौहान, कन्नौज (या काशी) के राठौर, बुन्देल खण्ड के परमार और वंगाल के सेन थे। गुजरात में भोला भीमदेव का राज्य था। यह परस्पर लड़ा करते थे श्री हर्ष के आश्रयदाता जयचन्द का दिल्ली के पृथ्वीराज से वैमनस्य था। राजाओं का परस्पर वैमनस्य और विलासता ही उनके अध: पतन का कारण वनी। वे वीर थे पर विलासी जयचन्द (जयन्तचन्द) के पिता मह गोविन्द चन्द के अन्तः पुर में 570 राणियाँ थीं पृथ्वीराज वीर होते हुए भी कम विलासी न थे पृथ्वीराज ने जयचन्द की पुत्री संयोगिकता का अपहर्ण किया था पं शिवदत्त जी दाधिमथ ने ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि जयन्तचन्द ही इतिहास में जयचन्द्र के नाम से विख्यात है, हर्ष के समय इनकी राजधानी कन्नौज न होकर काशी थी यद्यपि यह कन्नौज के ही राजा कहलाते थे। मुहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज पर कई आक्रमण किये पर सबमें परास्त हुआ अन्त में उसे जयन्द की सहायता मिली शरावती (घघर अम्बाला के पास) के तट पर युद्ध करते हुए पृथ्वीराज पकड़ा गया गौर में ले जाकर उसे अन्धा कर दिया अगले वर्ष जयचन्द को भी अपने किये की सजा मिली अन्त में चन्द्र वरदई की चाल से पृथ्वीराज द्वारा मुहम्मद गौरी का वध हुआ।

तावद् भा भारवेर्भाति यावन् माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः॥
नैषधं विद्वदोषधम्॥

खण्डनखण्डखाद्य दो ही इनके कीर्ति स्तम्भ हैं । इनका निवास स्थान बहुत लोग कन्नौज बतलाते हैं और कोई कोई बंगाल भी कहते हैं ।

गोवर्द्धन ई० 1200

इसका विरचित आर्यासप्तशती नाम का खण्डकाव्य है । इसके पिता का नाम नीलाम्बर था । आर्य्यासप्तशती के 38वें श्लोक में कवि ने अपने पिता को शुक्राचार्य्य के समान कवि बताकर उनकी बन्दना की है । इनका सगा भाई बलभद्र और इनके शिष्य का नाम उदयन था । इन दोनों ने इस ग्रंथ को बड़ी स्वच्छता से लिखकर इस का प्रचार किया था । ग्रंथ के आरम्भ में कवि ने शकर, मुरारी, हैमवती लक्ष्मी, द्वैमातुर और कामदेव की वन्दना कर, बाल्मीकि, व्यास गुणाढ्य, कालिदास, भवभूति और बाण की प्रशंसा की है । अन्त में अपने पिता नीलाम्बर की वन्दना कर सेनकुलतिलक भूपति की प्रशंसा की है । यही बंगाल का लक्ष्मणसेन था जिसकी सभा में गोवर्द्धन के साथ शरणदेव, जयदेव, उपमापति और धोई कवि थे । जयदेव ने अपने गीत गोविन्द में इन कवियों का नामोल्लेख किया है ।

आर्य्यासप्तशती—इस काव्य में 700 सौ आर्याएं और गीतियां हैं । आर्य्याओं की रचना अकारादि क्रम से की गई है कवि ने इस बात को स्वीकार किया है कि प्राकृत में जो सरसता आती है वह संस्कृत में नहीं । कवि ने गाथासप्तशती को ही इसका आधार माना है । यह काव्य शृंगाररस प्रधान है । जयदेव ने भी इनके शृंगार रस की बड़ी प्रशंसा की है ।

भानुदत्त ई० 1200

इन का विरचित 'गीतगौरीपति' काव्य है । यह शैव था । इस ने

अपने सब ग्रन्थों के पहले शिव का ही मंगलाचरण किया है। इस का निवास स्थान विदेहभू कहा है इस लिये यह मैथिल था। शारंधर पद्धिति में भानुदत्त के कई श्लोक मिलते हैं।

गीतगौरीपति– यह सर्गों का गीति काव्य है। इस काव्य में जयदेव के गीतगोविन्द का अनुकरण है। इसमें महादेव और पार्वती की शृंगार क्रीड़ा अनेक छन्द के श्लोकों में और भिन्न तालों के गीतों में वर्णित हैं। कवि ने प्रत्येक गीत के पूर्व में गीतगोविन्द के समान इस में भी अमुक ताल में अमुक राग में यह गाना गाना चाहिये ऐसा निर्देश किया है। यद्यपि यह काव्य अच्छा है तो भी गीतगोविन्द की बराबरी नहीं कर सकता। इन दोनों काव्यों के अनुकरण में और अनेक गीति काव्य लिखे गये जिन में कल्याण का गीतगंगाधर, राम का गीतगिरीश, वंशमणि का गीतदिगम्बर, प्रभाकर का गीतराघव, हरिशंकर का गीतराघव, और किसी राम कवि का रामगीतगोविन्द है। यह सब गीति काव्य गीतगोविन्द और गीतगौरिपति से नीचे दर्जे के हैं।

जल्हरा ई 1200

इस का विरचित सोमपाल विलास नाम का महा काव्य है जल्हण काश्मीर का निवासी था। मङ्ख ने अपने श्रीकण्ठचरितकाव्य के 25वे सर्ग में विद्वत्परिषद् के वर्णन में जल्हण को उस परिषद् का सभ्य वतलाया है। यह राजा पुरी के राजा सोमपालविलास का मंत्री भी था। इस के विरचित सप्तशतीछाया और सूक्ति-मुक्तावली यह दो ग्रन्थ भी हैं।

सोमपालविलास—यह महाकाव्य राजापुरी के राजा सोमपाल का सुस्सल के साथ जो युद्ध हुआ उस का वर्णन है। इस काव्य का निर्देश रत्नकण्ठ ने अपने स्तुति कुसुमाञ्जलि में किया है। इस काव्य पर राजानक रुचक विरचित अलंकारानुसारिणी नाम की टीका है।

मङ्ख ई० 1200

इस कवि विरचित श्रीकण्ठचरित महाकाव्य है यह रुय्यक का शिष्य था यह दोनों गुरु शिष्य काश्मीर के राजा जयसिंह के सभा पंडित थे मङ्ख की भी राजानक उपाधि थी इन के पिता का नाम विश्वावर्त और पितामह का नाम मन्मथ था इस के एक भाई का नाम अलंकार था जो काश्मीर के महाराज जयसिंह का मंत्री था दूसरे भाई का नाम शृंगार था। श्रीकण्ठचरित के 25 सर्ग हैं इस में शिवजी द्वारा त्रिपुरासुर के वध का वर्णन है इस का 25वां सर्ग बड़े ही महत्त्व का है इस में जयसिंह राजा के मंत्री अलंकार ने जो विद्वत्परिषद् बुलाई थी उस का विस्तार पूर्वक वर्णन दिया है इस में कहां है कि मङ्ख 4 भाई थे वह सब लेखक और उच्च पदाधिकारी थे इस काव्य पर जोनराज की बनाई टीका है।

वासुदेव ई० 1200

इन्होंने युधिष्ठिरविजय और वासुदेवविजय नाम के दो काव्य रचे। युधिष्ठिरविजय यमक प्रधान महाकाव्य है इसमें 8 आश्वास हैं यह प्रायः प्राकृत महाकाव्यों में ही होते हैं इसके प्रत्येक श्लोक में यमक है इसमें भारतीय युद्ध का वणन है। इसमें अप्रसिद्ध छंदों का ही प्रयोग हैं वासुदेवविजय इसमें 7 सर्ग हैं इसके अन्तिम 3 सर्गों को धातु काव्य कहा है। इन दोनों काव्यों की भाषा भिन्न है वासुदेव विजय में यमक का नाम भी नहीं पर इन दोनों का प्रचार काश्मीर के बाहिर विरला है यह कवि काश्मीर निवासी था। युधिष्ठिरविजय में केरल राजाओं का वणन होने से कई इनको केरल का कहते हैं पर अधिकतर यह काश्मीर का ही रहने वाले थे।

कविराज ई० 1200

'राघवपाण्डवीय' महाकाव्य के कर्ता कविराज जयन्तपुरी के कदम्ब राजा कामदेव के सभा पंडित थे। उनका नाम माधव भट्ट था कविराज उनकी उपाधि थी। राघवपाण्डवीय एक अद्भुत महाकाव्य है इसके प्रत्येक श्लोक में श्लेष द्वारा रामायण और महाभारत की कथा का साथ साथ वणन किया गया है। राघवपाण्वीय का कई कवियों ने अनुकरण किया है[1] इस कवि को विद्या का बड़ा गर्व था।

कल्हण ई० 1200

इसका विरचित राजतरंगिनी नाम का ऐतिहासिक काव्य है यद्यपि इस के पूर्व बाणभट्ट, वाक्पतिराज और बिल्हण ने अपने हर्षचरित, गौडवहो और विक्रमाङ्कदेवचरित में अपने आश्रयदाता राजाओं की जीवनी वर्णन कर ऐतिहासिक काव्य बनाने का प्रयास किया तथापि इतिहास का प्रधान विषय समय निर्देश उन लोगों के काव्यों में नहीं किया गया। कल्हण के काव्य में यह विशेषता है इसके अतिरिक्त उन काव्यों में एक ही राजा का वर्णन मिलता है किन्तु राजतरंगिनी में काश्मीर के प्राचीन से प्राचीन राजाओं का उन के कवि तथा विद्वानों का वर्णन है। कल्हण के पिता का नाम चम्पक था यह जाति से ब्राह्मण था और काश्मीर के राजा हर्ष (1089—1101) का महामंत्री था हर्ष की मृत्यु के एक वर्ष पहले कल्हण का जन्म हुआ हर्ष की मृत्यु के पश्चात् चम्पक बहुत समय तक जीवित रहा पर 1101 के वाद उसका राज कार्य से कोई सम्बन्ध न रहा। कल्हण के वंश के लोग काश्मीर के परिहासपुर में रहते थे। कल्हण

[1]सुबन्धुर्बाण भट्टाश्च कविराज इति त्रय:
वक्रोक्तिमार्गनिपुणः चतुर्थोविद्यते न वा

यद्यपि शैव था तो भी उसे बौद्धों का अहिंसा धर्म बहुत प्यारा था। मंख के श्री कण्ठचरित से ज्ञात होता है कि कल्हण के आश्रदाता अलकदत्त वा कल्याण ने कल्हण को राजतरंगिनी लिखने को प्रोत्साहित किया था। उसी ग्रन्थ से यह भी ज्ञात होता है कि कल्हण ने कालिदास, बाणभट्ट और विशेषकर विल्हण के ग्रन्थ का खूब अभ्यास किया था और कल्हण बड़ा भारी ज्योतिषी भी था। राजा जयसिंह ई० (1129—1150) के समय में राजतरंगिनी लिखी गई। इसने काश्मीर का इतिहास लिखने में किसी प्रकार का पक्षपात नहीं किया इस का विरचित अर्द्धनारीश्वर स्त्रोत्र भी है।

राजतरंगिनी—इसमें कलियुग के आरम्भ से काश्मीर के राजाओं का वर्णन है बौद्धधर्मावलम्भी अशोक और कुशानवंशी कनिष्ठ का भी वर्णन है।

परन्तु प्रामाणिक इतिहास छठी शताव्दी से प्रारम्भ होता है। इस ग्रन्थ के लिखने में कल्हण ने स्वयं कहा है कि उसने नीलमत-पुराण, क्षेमेन्द्र की राजावली आदि का उपयोग किया है इस ने शिलालेख, मन्दिर, प्रासाद, और स्मारकों पर उत्कीर्ण लेख, ताम्रपत्र, दानपत्रादि प्रशस्तियां, हस्तलिखित ऐतिहासक ग्रन्थ और सिक्के भी देखे थे। कल्हण की राजतरंगिनी 8 तरंगों में विभक्त है इसमें तीन तरंगों के प्रथम 52 राजा काल्पनिक हैं और बाकी के तरंगों के राजा ऐतिहासिक हैं ऐसा स्वयं कल्हण ने कहा है। अष्टम तरंग को जिस में 3450 श्लोक हैं अपनी जोबितावस्था में अनुभूत राजकीय विषयों के वर्णन में कल्हण ने लिखा है।

कल्हण के बाद 400 वर्ष का काश्मीर का इतिहास जोनराज ने लिखा फिर श्रीवर ने लिखा और फिर अकबर के समय प्राज्यभट्ट ने लिख यह सब प्रथम, द्वितीय और तृतीय तथा चतुर्थ राजतरंगिणी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

कल्याण ने नीलमतपुराण को स्वयं पढ़ा था इसमें काश्मीर के इतिहास का भी वर्णन है इसके अतिरिक्त काश्मीरी नागों के धार्मिक नेता राजा नील के सैद्धान्तिक उपदेशों का वर्णन है। 'देविका नदी की नीलमत पुराण में बड़ी प्रशंसा की है और तंत्रों में काशमीर देश की सीमा भी बतलाई है।

जयद्रथ ई० 1300

इसका विरचित 'हरचरितचिन्तामणि काव्य है यह काश्मीर का रहने वाला शृंगाररथ का पुत्र और प्रसिद्ध अलंकारविमर्शिनीकार जयरथ का भाई था। इस का और जयरथ का आश्रयदाता काश्मीर का राजा राजदेव (ई० 1303 से 1226) था। जयद्रथ और जयरथ दोनों सुभटदत्तशिव और शंकररथ के शिष्य थे। यह दोनों भाई शैव थे। जयद्रथ की उपाधियां राजानक और महामहेश्वराचार्य्य थीं।

हरचरितचिन्तामणि—यह काव्य महादेव के अनेक अवतारों के वर्णन में लिखा गया है इस में 32 प्रकाश हैं और प्रायः अनुष्टुप् छंद इसमें हैं इस में सरल भाषा में शिवपुराण की सब कथायें लिखी गई हैं।

---

१. यैव देवी उमा सैव देविका प्रथिता भुवि।
मुद्राणामनुकम्पार्थं भवद्भिरवतारिता ।।

२. शारदामठमारभ्य कुंकुमाद्रितटान्तकः।
तावत् कश्मीरदेशःस्यात् पंचाशत योजनात्मकः ।।

जगद्धरभट्ट ई० 1300

इस का विरचित 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि' नाम का स्तोत्र है स्तुति कुसुमाञ्जलि के अन्त में कवि ने अपना परिचय दिया है इस से मालूम होता है कि इन के पिता का नाम रत्नधर और पितामह का गौरधर था इन की निवास भूमि काश्मीर थी। काश्मीर में ई० 1200 से ई० 1600 तक-का तन्त्र व्याकरण का पठन-पाठन होता था। जगद्धर ने अपने पुत्र को पढ़ाने के लिये कातन्त्रव्याकरण की वृत्ति बालबोधिनी लिखी थी। इस बालबोधिनी का व्याख्यान उसके (नप्तृ-कन्या-तनया-तनूज) पोते की कन्या के दौहित्र राजानक शितिकण्ठ ने लिखा था। इसके विरचित अन्य ग्रन्थ 'अपशब्दनिराकरण' नाम की व्याकरण की पुस्तक है। यह जगद्धर मालतीमाधव, मेघदूत, वासवदत्ता आदि काव्यों के टीकाकर जगद्धर से भिन्न है।

स्तुति-कुसुमाञ्जलि—एक स्त्रोत्र काव्य है इसमें 39 स्त्रोत्र हैं जिन में शिव की स्तुति है इस में नायकादिकों के स्थान पर भगवान की स्तुति है इस पर रत्न कण्ठ विरचित लघुपंचिका नाम की टीका ई० 1700 में की गई।

शार्ङ्गधर ई० 1336

इसका बिचरित शार्ङ्गधर पद्धति ग्रन्थ है इस के पिता दामोदर और पितामह राघवदेव थे यह अजमेर के रहने वाले भाट्ट ब्राह्मण थे यह हठी रणथम्बोर नरेश हमीर की सभा के कवि और प्रधान वैद्य भी थे। गोपाल और देवदास इस के चचा थे लक्ष्मीधर और कृष्ण इस के छोटे भाई थे। यह वैद्य था इस का विरचित वैद्यक ग्रन्थ शार्ङ्गधरसंहिता नाम का है जिस में 2600 श्लोक हैं इस संहिता

की अनेक टीकाओं में बोपदेव कृत टीका भी है। बोपदेव देवगिरि के यादव राजा के मंत्री हेमाद्रि (चतुर्वर्गचिन्तामणि के कर्त्ता) का आश्रित पंडित था शार्ङ्गधर पद्धति[१] —यह सुभाषित ग्रन्थ हैं इस में 163 पद्धतियां हैं सब श्लोक मिला कर 4689 हैं इस में अनेक श्लोक कवि विरचित भी हैं। यह वल्लभदेव के सुभाषितावलि का आधार ग्रन्थ है।

१. संसारविषवृक्षस्य द्वयमेवामृतं फलम्।
सुभाषितरसास्वादः सद्भिश्चसह संगतम्॥

राज आर्ट प्रैस दिल्ली